### श्रील रूप गोस्वामी विरचित

# उत्कलिकावल्लरिः

गौडीय वेदान्त बुक ट्रस्ट

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

श्रील रूप गोस्वामी विरचित
स्तवमालाके अन्तर्गत

# उत्कलिकावल्लरिः

गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु द्वारा
रचित स्तवमाला–विभूषण भाष्य सहित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके
प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्री

**श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके**
अनुगृहीत

**त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज**
द्वारा सम्पादित

**गौड़ीय वेदान्त बुक ट्रस्ट**

**प्रकाशक**—श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज

**प्रथम संस्करण**—५,००० प्रतियाँ
श्रील रूप गोस्वामीजीकी तिरोभाव तिथि
श्रीचैतन्याब्द ५२३
२ अगस्त २००९

**प्राप्तिस्थान**

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)
०५६५-२५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५-२४४३२७०

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११-२५५३३५६८

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
राधाकुण्ड रोड, गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०५६५-२८१५६६८

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी,
उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५-२४४३१०१

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰ बं॰)
०९३३३२२२७७५

नित्यलीला प्रविष्ट अस्मदीय गुरुपादपद्म अष्टोत्तरशत श्री श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके श्रीकरकमलोंमें

# ग्रन्थसमर्पण

हे परम करुणामय एवं अहैतुकी कृपालु श्रील गुरुपादपद्म! हे मुकुन्दप्रेष्ठ! हे स्वरूप–रूपानुगवर! श्रीबलदेव विद्याभूषण कृत वेदान्तसूत्रके श्रीगोविन्द–भाष्यको अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपादसे कृपा–आशीर्वादके रूपमें प्राप्त करनेवाले तथा श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुको सदैव रूपानुग वैष्णवके रूपमें प्रमाणित करनेमें उत्साहित रहनेवाले! आपकी प्रेरणासे प्रकाशित यह ग्रन्थ आपके ही श्रीकरकमलोंमें समर्पित है।

# भूमिका

आज मुझे श्रीशचीनन्दन गौरहरिके नित्य परिकर शुद्ध-भक्तिरस-रसिक-कुल-चूड़ामणि श्रीरूप गोस्वामी द्वारा रचित उत्कलिकावल्लरिः ग्रन्थका हिन्दी संस्करण श्रद्धालु पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त आनन्दकी अनुभूति हो रही है।

श्रीषड्गोस्वामियोंमें अन्यतम श्रील जीव गोस्वामिपाद 'श्रीस्तव-माला' के प्रारम्भमें लिखते हैं—

श्रीमदीश्वर-रूपेण रसामृतकृता कृता।
स्तवमालानुजीवेन जीवेन समगृह्यत॥
(श्रीस्तवमाला श्लोक संख्या १)

"मदीश्वर श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ एवं [श्रीचैतन्यदेव, श्रीप्रेमन्दुसागर-संज्ञक श्रीकृष्णेर-अष्टोत्तर-शतनाम, श्रीकुञ्जबिहारी-अष्टक, श्रीराधिका-स्तव, चाटुपुष्पाञ्जलि आदि] अनेकानेक स्तवोंकी रचना की थी। ये समस्त अपूर्व स्तव भक्तोंके कण्ठभूषण बनें, ऐसा सोचकर क्रमरहित अवस्थामें इधर-उधर बिखरे हुए इन सभी स्तवरूप पुण्योंको संग्रहकर उनके शिष्य जीव नामक मैंने उन्हें स्तवमालाके रूपमें यथाक्रमसे गुम्फित किया है।"

गौरपार्षद प्रवर श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने गौर-कृपाभिषिक्त होकर अप्राकृत-रस-शास्त्रके आचार्यके रूपमें जिन समस्त अमूल्य कृतियोंकी रचना की है, श्रीस्तवमाला भी उन्हींमेंसे श्रील रूप गोस्वामीजीकी एक अपूर्व कृति है। श्रीश्रीराधाकृष्ण-सेवा-प्रार्थनामय 'उत्कलिकावल्लरिः' श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित एवं श्रील जीव गोस्वामी द्वारा संगृहीत इसी श्रीस्तवमालाका एक काव्य-पुष्प है। श्रील रूप गोस्वामिपादकी उन्नत-उज्ज्वल-माधुर्यमयी भक्तिरूपी-भ्रमरीके मधुर गुँजनका उच्चादर्श ही इस स्तोत्रमें परिस्फुटित हुआ है। 'उत्कलिका' का अर्थ है—'सुतीव्र उत्कण्ठा' अथवा 'सुतीव्र

व्याकुलता' तथा 'वल्लरिः' का अर्थ है—'लता'। अतएव 'उत्कलिका-वल्लरिः' का अर्थ हुआ—सुतीव्र उत्कण्ठामयी लता।

यद्यपि इस उत्कलिकावल्लरिः का प्रत्येक श्लोक स्वयंमें परिपूर्ण है, तथापि इसकी भावशृङ्खला 'पीत्वा, पीत्वा पुनः पीत्वा' की रीतिके अनुसार उस बिन्दु तक जा पहुँचती है, जहाँ पाठक अथवा श्रोता समस्त प्रकारके तापोंसे विमुक्त होकर श्रीराधारमणके श्रीचरणोंका किङ्कर बननेके लिए लालायित हो उठता है। श्रीरूप गोस्वामी इस उज्ज्वल-माधुर्यमय-रस-सिन्धुकी अद्भुत स्फूर्तिरूपी-तरङ्गोंमें डूबते-उतरते हैं, विलाप करते हैं, आर्त्तनाद करते हैं, सिसकते हैं तथा पुनः-पुनः मूर्च्छित होते हैं। ऐसी स्फूर्ति होनेपर वे व्रजभूमि, व्रजपरिकर एवं श्रीश्रीराधाकृष्णके प्रणयीजनोंके समक्ष श्रीयुगलमाधुरीके कृपाकटाक्षको प्राप्त करनेकी लालसा प्रकट करते हैं तथा लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण एवं वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकी पारस्परिक, नवनवायमान, परम दिव्य, वैचित्र्यपूर्ण केलिमय लीलाओंमें प्रवेशकी अभिलाषासे युक्त होकर हृदय-विदारक गुहार लगाते हैं। श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने इस विरह-स्तोत्र-काव्यमें युगलकेलि-प्रणयरसकी अतल गहरायीमें उतरकर अपनी हृदय-विदारक विरहमयी अनुभूतियोंके अनुपम मुक्ताकण बिखेर दिये हैं। इन मुक्ताकणोंकी द्युतिका आभास व्रजरसके उपासकोंको तो हो सकता है, किन्तु भजन-सम्पत्तिसे शून्य जीवोंके लिए उसकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। पग-पगपर श्रील रूप गोस्वामीकी प्रार्थनाएँ अति रहस्यमयी, विदग्धतापूर्ण एवं मार्मिक होती जाती हैं।

अपने नित्य स्वरूपमें आविष्ट श्रीरूप गोस्वामी प्रभु अप्राकट्यकी पूर्ववर्त्ती दशामें कुछ और नहीं कह पाते, पुञ्जीभूत विरह ताप थम नहीं पाता, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, अविरल अश्रुधाराओंके साथ अन्तमें यही निवेदन करते हैं—

उद्गीर्णाभूदुत्कलिकावल्लररग्रे वृन्दाटव्यां नित्यविलास व्रतयोर्वाम्।
वाङ्मात्रेण व्याहरतोऽप्युल्ललमेतामाकर्ण्येशौ कामितसिद्धिं कुरुतं मे॥

(उत्कलिकावल्लरिः श्लोक संख्या ७०)

हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरि श्रीराधिके! इस श्रीवृन्दावनमें नित्य-विलास-परायण तुम्हारे सम्मुख यह उत्कलिकावल्लरिः (उत्कण्ठारूप लता) उत्पन्न हुई है। केवल वचनोंके द्वारा ही तुम्हारे निकट इसका कीर्त्तन करके मुझमें कम्प उदित हो रहा है, अतः इसे सुननेके बाद कृपापूर्वक इस अतिशय दीन-जनकी अभिलषित सेवा-प्राप्तिकी प्रार्थनाको सिद्ध (सफल) करो।

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामिपादने समस्त शास्त्रोंके सार स्वरूप भक्तिके गूढ़ सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए विरह-रससे परिपूर्ण उन्नत-उज्ज्वलरसमयी भक्ति-धाराको इस स्तोत्रमें प्रवाहित किया है। उपेन्द्रवज्रा इत्यादि विविध छन्द, किलकिञ्चित्, कुट्टमित और बिव्वोक आदि शृङ्गारपरक भक्तिभाव, श्लेष, रूपक एवं अनुप्रास इत्यादि अलङ्कारोंसे यह स्तोत्र-काव्य अत्यद्भुत बन पड़ा है। रस-ध्वनिकी स्वतन्त्र व्याख्या प्रस्तुत करनेके कारण श्रीरूप गोस्वामी प्रभुको ध्वनि-प्रस्थापन-परमाचार्यकी ख्याति प्राप्त है। उनकी भावाभिव्यक्ति अद्भुत है और कलाभिव्यक्तिका शैली-विन्यास भी अपूर्व है।

आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु तथा ज्ञानी व्यक्ति सुकृतिवान होनेपर भगवान्‌का भजन तो कर सकते हैं, किन्तु 'कृष्णभक्तिरसभाविता मति' अर्थात् श्रीकृष्ण-भक्तिरसमें ओतप्रोत मतिके बिना श्रीकृष्णकी सेवा-सुखकी लालसा करोड़ों-करोड़ों जन्मोंकी सुकृतियोंके रहनेपर भी नहीं मिल सकती।

इसलिए श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने ऐसी लालसाको प्राप्त करनेका उपाय बतलाते हुए कहा है—

> तन्नामरूपचरितादि-सुकीर्त्तनानु-
> स्मृत्योःक्रमेण रसनामनसी नियोज्य।
> तिष्ठन् व्रजे तदनुरागिजनानुगामी
> कालं नयेदखिलमित्युपदेशसारम्॥
>
> (श्रीउपदेशामृत श्लोक संख्या ८)

"भक्तमात्रको चाहिये कि वह अपनी रसना और मनको अन्यान्य कृष्णेतर विषयोंसे हटाकर श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला-कथाके कीर्त्तन और स्मरणमें क्रमशः लगाकर, श्रीव्रजमण्डलमें ही निवासकर, श्रीकृष्णके अनुरागीजनोंका अनुगामी बनकर अपने समस्त समयको व्यतीत करता रहे; यही समस्त उपदेशोंका सार है।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रील रूप गोस्वामीने व्रजरस-लोलुप भक्तोंको श्रीवृन्दावनधाममें वास करने हेतु परामर्श दिया है। यद्यपि जिस किसी भी प्रकारसे व्रजवास करनेका भी शास्त्रोंमें बहुत माहात्म्य बतलाया गया है, तथापि केवल शरीरके द्वारा व्रजवास करनेमात्रसे ही श्रीमन् महाप्रभु तथा उनके मनोऽभीष्ट संस्थापक श्रील रूप गोस्वामीके द्वारा उपदिष्ट विशुद्ध भक्तिरसको प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने व्रजमें वास करनेकी पद्धतिका भी उक्त श्लोकमें ही निरूपण किया है। जिस किसी प्रकारसे भोजन, शयन, विहार अथवा लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा इत्यादि विषय भोगोंकी आड़में कपट भजन करनेवालेकी तो बात ही क्या, वैधी-भक्तिपरायण साधकोंका अनुगमन करनेसे भी श्रील रूप गोस्वामीके द्वारा आचरित-प्रचारित उन्नत-उज्ज्वलरसमय प्रेमभक्तिकी अथवा रूपानुगत्वकी प्राप्ति नहीं होगी। श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके अन्तरङ्ग व्रजलीलाके परिकरोंका अनुगमन करनेवाले रसिक गुरुजनोंके आनुगत्यमें रहकर ही श्रीकृष्णभक्तिका अनुशीलन करना पड़ेगा।

इसलिए केवलमात्र शरीरसे वास करनेसे ही कोई व्रजवासी नहीं होता, बल्कि मन अथवा चित्तवृत्तिसे निरन्तर व्रज-रसानुगामी जनोंके अनुगत होकर जीवनका प्रत्येक क्षण बितानेसे व्रजवास सार्थक होता है।

इसी सिद्धान्तको प्रतिपादित करनेके लिए ही शारीरिक रूपसे कभी भी व्रजमें एक मुहूर्त्तके लिए भी नहीं रहनेवाले श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामीको श्रीमन् महाप्रभुने 'शुद्ध व्रजवासी' कहकर सम्बोधित किया था।

एक और बात ध्यान रखने योग्य है कि प्रारम्भिक अनर्थग्रस्त अवस्थामें केवल लीलाओंके मानसिक स्मरणका अभ्यास करना तथा इस प्रकारके निर्जन भजन करनेका छल करके आलस्यको प्रश्रय देना उचित नहीं है। अप्राकृत रसाचार्य श्रील रूप गोस्वामीने रागभजनकी जिस पद्धतिका निरूपण किया है, उस पद्धतिको अतिक्रम करके आत्यान्तिकी (अतिश्रेष्ठ) हरिभक्तिको प्रदर्शित करनेकी चेष्टा केवल उच्छृङ्खलता और अमङ्गलमय जगत्-नाशकर कुचेष्टामात्र है। हमारे परमाराध्य परमगुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के इस उपदेशका सदैव स्मरण रखना चाहिये— "कीर्त्तन प्रभावे, स्मरण हइबे, से काले भजन निर्जन सम्भव।"

अतएव श्रील रूप गोस्वामी द्वारा अभिलषित उन्नत-उज्ज्वल-भक्तिरसके अन्तर्गत सेवा-सुखके लेशमात्रको प्राप्त करनेके इच्छुक साधकोंके लिए अन्याभिलाषिता शून्य होकर सजातीय-आशय-स्निग्ध भक्तोंके सङ्गमें अनुकूल कृष्णानुशीलनमयी उत्तमा भक्तिका याजन करना ही विधेय है।

## उत्कलिकावल्लरिः के रचयिता महामहिम श्रील रूप गोस्वामी प्रभु

श्रील रूप गोस्वामी प्रभु श्रीगौराङ्गलीलामें षड्गोस्वामियोंमेंसे अन्यतम तथा व्रजलीलामें श्रीरूपमञ्जरी हैं। इनके पूर्वज कर्णाटक देशमें वास करते थे। किसी कारणसे इनके पूर्वजोंमेंसे कोई एक अपने देशको छोड़कर बङ्गालमें आकर बस गये थे। इन्हींके वंशगत भारद्वाज गोत्रीय यजुर्वेदीय ब्राह्मण कुलमें श्रील रूप गोस्वामीका आविर्भाव लगभग १४११ शकाब्द (अर्थात् १४८९ ई॰) में बङ्गालके मोरग्राम माधाईपुर नामक ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम कुमारदेव था। श्रील सनातन गोस्वामी श्रील रूप गोस्वामीके बड़े भाई तथा अनुपम या वल्लभ छोटे भाई थे। इन्हीं अनुपमके ही पुत्र श्रीजीव गोस्वामी हुए। बचपनसे ही इन तीनों भाइयोंकी भगवच्चरणारविन्दमें अत्यन्त अनुरक्ति थी।

युवावस्थामें विद्याध्ययन समाप्त करनेके बाद ही बङ्गाल (गौड़देश) के बादशाह हुसैन शाहने इनकी तीक्ष्ण मेधा, उदारता और अन्यान्य समस्त गुणोंसे प्रभावित होकर श्रीसनातन गोस्वामीको अपना प्रधानमन्त्री और श्रील रूप गोस्वामीको उप-प्रधानमन्त्री (विशिष्ट कर्मचारी) के पदपर नियुक्त किया। १५१४ ई॰ में जब श्रीचैतन्यमहाप्रभुने प्रथम बार व्रजयात्रा की, उस समय उनसे इनकी रामकेलि गाँवमें भेंट हुई। श्रीमन् महाप्रभुजी तो उस बार वहींसे ही लौटकर जगन्नाथपुरी चले गये। परन्तु उनके सत्सङ्गके बाद श्रीरूप गोस्वामीको कृष्णप्राप्तिकी उत्कण्ठा इतनी अधिक सताने लगी कि राजकार्य इत्यादि सभी कुछ छूट गया। फिर द्वितीय बार जब श्रीचैतन्य महाप्रभुजी श्रीवृन्दावन पधारे, तब जिस समय वे वृन्दावनका दर्शन समाप्तकर लौट रहे थे, तो प्रयागमें श्रीरूप गोस्वामीकी महाप्रभुजीसे भेंट हुई। उस समय महाप्रभुने अपने प्रिय रूपके हृदयमें शक्ति सञ्चारकर उन्हें भक्तिरसतत्त्वका अपूर्व विवेचन श्रवण कराया था। श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें इसका वर्णन किया गया है।

प्रभु कहे,—शुन, रूप, 'भक्तिरसेर लक्षण'।
सूत्ररूपे कहि विस्तार ना जाय वर्णन॥
पारावार-शून्य गभीर भक्तिरस-सिन्धु।
तोमाय चखाइते तार कहि एक 'बिन्दु'॥
(चै॰ च॰ म॰ १९/१३६-१३७)

अर्थात् श्रीमन् महाप्रभुजीने कहा—"हे प्रिय रूप! मैं तुम्हें भक्तिरसका लक्षण बतला रहा हूँ। किन्तु सूत्र रूपमें कह रहा हूँ, क्योंकि विस्तार रूपसे इसका वर्णन करना असम्भव है। पारावार अर्थात् यह भक्तिरसामृतसिन्धु आर-पारशून्य गभीर है। उसमेंसे मैं तुम्हें एक बिन्दु प्रदान कर रहा हूँ।" इस प्रकार दस दिनों तक प्रयागमें रहकर उन्होंने भक्तिरसतत्त्वका अपूर्व विवेचन किया। श्रील रूप गोस्वामीने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, ललितमाधव, विदग्धमाधव आदि ग्रन्थोंमें इसका विवेचन किया है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रति विलक्षण अनुरागके कारण श्रील रूप गोस्वामीका गृहत्याग, दैन्य, विषयोंके प्रति वैराग्य इत्यादि सर्वत्र ही प्रसिद्ध है। श्रीचैतन्यचरितामृत, भक्तमाल आदि ग्रन्थोंमें सविस्तार इनकी जीवनीका वर्णन है। श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशयने यथार्थतः इन्हें 'श्रीचैतन्यमनोऽभीष्ट-स्थापक' की उपाधि दी है। श्रीव्रजमण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार और भक्तिशास्त्रोंका प्रचार—दो कार्योंके लिए श्रीचैतन्यमहाप्रभुने इन्हें विशेष आदेश दिया था। प्रयागसे श्रील रूप गोस्वामी वृन्दावनमें उपस्थित हुए और वहाँसे बङ्गालमें घर लौटकर विषय व्यवस्था और जीव गोस्वामीकी विद्याध्ययन आदिकी व्यवस्थाकर नीलाचलमें महाप्रभुके निकट उपस्थित हुए थे। गौड़देशमें रहते समय ही इन्होंने विदग्धमाधव और ललितमाधव नाटकके सूत्र लिखना आरम्भ कर दिया था। व्रजलीला और पुरलीलाको एक ही नाटक ग्रन्थमें रचनाकर व्रजविरहको प्रशमन करनेकी इच्छा रहनेपर भी उड़ीसाके सत्यभामापुरमें श्रीसत्यभामादेवीकी आज्ञा एवं नीलाचलमें महाप्रभुके साक्षात् उपदेशसे पृथक्-पृथक् रूपमें नाटक ग्रन्थोंकी रचना की। भक्तगोष्ठीमें श्रीचैतन्य महाप्रभु इनकी रचनाओंको सुनकर कितने आनन्दित हुए, एकमात्र रसिकजनके लिए ही वह संवेद्य है। इनमें सर्वशक्तिका सञ्चारकर प्रभुने इन्हें वृन्दावनमें आचार्यपद प्रदानकर भेजा और अपने मनोऽभीष्टको पूर्ण किया। इसलिए श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशयने लिखा है—

श्रीचैतन्य मनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।<br>
स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्॥

श्रीरूपगोस्वामीकी रचित ग्रन्थावली—भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वल-नीलमणि, लघुभागवतामृतम्, विदग्धमाधव, ललितमाधव, निकुञ्जरहस्य-स्तव, स्तवमाला, श्रीराधाकृष्ण गणोद्देशदीपिका, मथुरामाहात्म्य, पद्यावली, उद्धवसन्देश, हंसदूत, दानकेलिकौमुदी, कृष्णजन्मतिथि विधि, प्रयुक्ताख्यात् मञ्जरी, नाटकचन्द्रिका इत्यादि।

## भाष्यकार श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु

मेरे परमाराध्य गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीगौड़ीय वेदान्त और गौड़ीय-वेदान्ताचार्य-केशरी श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुके प्रति विशेष गौरव प्रदर्शित करनेके लिए ही उन्हींके नामानुसार अपने द्वारा प्रतिष्ठित संस्थानका नाम 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' तथा अपने द्वारा संन्यास प्रदत्त शिष्योंको 'श्रीभक्तिवेदान्त' उपाधि प्रदान की थी। उन्होंने स्वलिखित 'गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव' प्रबन्धमें लिखा है—"श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके साथ श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषणका जो अच्छेद्य सम्बन्ध है, उसका तो कहना ही क्या है। श्रीबलदेवके आचार-विचार और भजन-पद्धतिको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने सम्पूर्ण रूपसे अङ्गीकार किया है, क्योंकि श्रीबलदेव रूपानुग वैष्णव हैं। उनका रूपानुगत्य उनके विविध ग्रन्थोंके द्वारा प्रकाशित है।"

उन्होंने और भी लिखा है कि "श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुके विषयमें आलोचना करनेपर सर्वप्रथम उनके द्वारा रचित वेदान्तभाष्य—श्रीगोविन्दभाष्यकी बात ही स्मृति पटलपर जागरित होती है। उनके भाष्यने ही उन्हें चारों सम्प्रदायोंके वैष्णवोंमें सञ्जीवित करके रखा है।"

गदाधराभिन्न-तनु श्रीगौरशक्ति श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी उक्ति है—"विद्याभूषण महाशय गौड़ीय सम्प्रदायके एक नक्षत्र विशेष हैं। उन्होंने इस सम्प्रदायका जितने परिमाणमें उपकार किया है, उतना श्रीपाद गोस्वामियोंके बाद और किसीने नहीं किया। इससे यह बोध होता है कि वे श्रीमन् महाप्रभुके नित्य पार्षदोंमेंसे एक जन है।" श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुने गलता-पहाड़ (जयपुर) में गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायकी विजय-वैजयन्तीको फहराकर उसकी माध्व-सम्प्रदायके अन्तर्गत होनेकी वैशिष्ट्यपूर्ण घोषणा की है तथा उनके इस साम्प्रदायिक सेवा-कार्यके द्वारा यह स्वतः ही प्रमाणित हो गया कि वे श्रीरूपानुग गौड़ीय-वैष्णव हैं। श्रीबलदेव

प्रभु श्रीमन् महाप्रभुके अनुगत श्यामानन्द परिवारके अन्तर्गत श्रीराधादामोदरके दीक्षित शिष्य हैं; श्यामानन्द प्रभुने श्रील जीव गोस्वामीका आनुगत्य स्वीकार किया और श्रीजीव प्रभु ऐकान्तिक रूपानुग है, अतएव श्रील बलदेव प्रभुका भी रूपानुग वैष्णवत्व प्रमाणित होता है। दूसरी ओर, श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके सर्वप्रधान शिक्षा-शिष्य हैं एवं श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वितीय श्रीरूपके नामसे विख्यात है, अतएव श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके अनुगत होनेके कारण भी श्रील बलदेवके रूपानुगत्वमें कोई संशय नहीं है। इन्होंने श्रीरूप गोस्वामीके प्राणधन स्वरूप श्रीगोविन्ददेवकी कृपा प्राप्तकर उन्हींकी सेवाको अक्षुण्ण रखा। अतः इस दृष्टिकोणसे भी श्रील रूप गोस्वामी और उनके आराध्यदेव श्रीगोविन्दजीकी कृपा प्राप्त करनेके कारण क्या इनके रूपानुगत्यमें कोई संशय रह जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने एकाधारमें पाञ्चरात्रिक और भागवत-परम्परामें अवस्थान करके भी शेषोक्त अर्थात् भागवत-परम्पराके अनुसार ही भजन-निष्ठाके माधुर्य और श्रेष्ठत्वको स्थापित किया है।

श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुने स्वरचित 'प्रमेयरत्नावली' में श्रीगुरु-परम्परा प्रणालीको प्रदर्शित किया है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भाष्यकार श्रील बलदेव विद्याभूषण श्रीगौड़ीय-आम्नाय-धारामें स्नात एवं रूपानुग गौड़ीय वैष्णवाचार्य-सम्राट हैं। मदभीष्टदेव श्रील गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टत्तरोशतश्री श्रीमद्भक्ति प्रज्ञानकेशव गोस्वामी महाराजने श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुकी निम्नलिखित श्लोक द्वारा वन्दना की है—

श्रीमध्व सम्प्रदायश्री-चैतन्य-कुलरक्षकः।
वेदान्ताचार्य-शार्दूलो बलदेवो महामतिः॥

"श्रीमाध्वसम्प्रदायके श्री अर्थात् शोभा स्वरूप श्रीचैतन्यदेवके कुल अर्थात् गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायके रक्षक वेदान्ताचार्य-सिंह महामति श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु जययुक्त हों।"

श्रील गुरुपादपद्मने यह भी कहा है कि जो श्रील बलदेवको रूपानुग स्वीकार करनेमें कुण्ठित हैं, वे वास्तवमें भ्रान्त और वैष्णव-अपराधी हैं। अतएव ऐसे असत् सम्प्रदायको सब प्रकारसे दुःसङ्ग जानकर उसका परित्याग कर पानेसे ही श्रील बलदेव प्रभुके प्रति वास्तविक श्रद्धा प्रदर्शित होगी। ऐसा कहा जाता है कि चैतन्य-पार्षद श्रीगोपीनाथ मिश्र, जिन्होंने सार्वभौमके साथ श्रीमन् महाप्रभुके श्रीमुखसे निःसृत सूत्र-भाष्यको श्रवण किया था, वही बादमें ब्रह्मसम्प्रदायके भाष्यकर्त्ताके रूपमें श्रील बलदेव विद्याभूषणके रूपमें आविर्भूत हुए।

आचार्य श्रील बलदेव द्वारा रचित ग्रन्थ-तालिका—श्रीगोविन्दभाष्य, सूक्ष्म-टीका, सिद्धान्तरत्नम् या भाष्य पीठकम्, इसकी टीका, साहित्य कौमुदी, व्याकरण कौमुदी, तत्त्व सन्दर्भकी टीका, ईशोपनिषद् भाष्य, सिद्धान्तदर्पणम्, काव्य-कौस्तुभ, गोपाल-तापनी-भाष्य, साहित्य कौमुदी टीका (कृष्णानन्दिनी), छन्दकौस्तुभ भाष्य, लघुभागवतामृत टीका, चन्द्रालोक ग्रन्थकी टीका, नाट्यचन्द्रिका, श्रीमद्भागत टीका (वैष्णवानन्दिनी), वेदान्त स्यमन्तक, प्रमेय रत्नावली, गीता-भूषण-भाष्य, विष्णु-सहस्रनाम भाष्य (नामार्थसुधा), संक्षेप भागवतामृत-टिप्पणी (सारङ्ग-रङ्गदा), स्तवमाला-विभूषण-भाष्य, पदकौस्तुभ, श्रीश्यामानन्द शतक-टीका।

श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुकी अतिमर्त्य जीवनी और दार्शनिक विचार-वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें सुष्ठु रूपसे जाननेकी इच्छा रखनेवाले पाठकोंको मैं स्व-सम्पादित 'प्रबन्ध-पञ्चकम्' के द्वितीय और तृतीय प्रबन्ध तथा इन सभी विचारोंके मूल स्रोत मदीय ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजके द्वारा लिखित 'सिद्धान्तरत्नम् ग्रन्थ' के सम्पादकीय निवेदन, मदीय गुरु-पादपद्म श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके द्वारा लिखित 'गौड़ीय वेदान्तचार्य श्रीबलदेव', श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद प्रदत्त 'भाष्यकारका विवरण' एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा लिखित 'गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण' इत्यादि प्रबन्धोंकी आलोचना करनेका अनुरोध करता हूँ।

प्रस्तुत श्रीउत्कलिका-वल्लरी-स्तोत्रके मूल श्लोकोंका अनुवाद सर्वप्रथम श्रीमान् राधेश दास (गांगुली दादु) ने प्रस्तुत किया था, विदुषी बेटी मधु खण्डेलवाल (एम०ए०पी०एच०डी०) ने उक्त श्लोकानुवादको सरस और सरल बनाते हुए श्रीपाद बलदेव विद्याभूषणके द्वारा रचित टीकाको अनुवाद सहित प्रस्तुत करके ग्रन्थकी शोभाको परिवर्द्धित किया है। उसका यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। दिल्ली निवासी श्रीमान् गणेशीलाल शर्मा एम०ए० (संस्कृत), आचार्य—साहित्य, पुराणेतिहास, शिक्षाशास्त्री (लब्ध स्वर्णपदक) ने मूल संस्कृत तथा श्रीमान् भक्तिवेदान्त माधव महाराज एवं श्रीमान् गोकुलपति दासाधिकारीने हिन्दी अनुवादका प्रूफ-संशोधन किया है। कम्प्यूटर द्वारा कम्पोजिंग, ले-आउट तथा प्रकाशन सम्बन्धी विविध सेवाकार्योंके लिए श्रीमान् विजयकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमान् अच्युतानन्द ब्रह्मचारी तथा बेटी शान्ति दासी आदिकी सेवा-प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय एवं उल्लेखनीय है, मुखपृष्ठका चित्र बेटी बकुला दासी और डिजाइन श्रीमान् कृष्णकारुण्य ब्रह्मचारीने प्रस्तुत किया है। श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी इन सब पर प्रचुर कृपा आशीर्वाद वर्षण करें, यही मेरी प्रार्थना है।

ग्रन्थके भाव और भाषाको सहज-सरल रखकर सर्वसाधारणके लिए बोधगम्य बनानेकी चेष्टा की गयी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि रूपानुगाभक्तिके लोलुप सज्जनोंके द्वारा इस ग्रन्थका आदर होगा तथा इसके अनुशीलन द्वारा सभी वैष्णव-भक्तोंके उल्लासके वर्धित होनेसे हम अपने परिश्रमको सार्थक मानेंगे।

गुरु-पूर्णिमा<br>श्रील सनातन गोस्वामीकी<br>तिरोभाव तिथि<br>श्रीचैतन्याब्द ५२३<br>७ जुलाई, २००९

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी<br>दीन-हीन<br>**त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त नारायण**

**॥ श्रीवृन्दारण्यविहारिणे नमः ॥**

**श्रीरूप गोस्वामी द्वारा विरचित स्तवमालाके अन्तर्गत**

# उत्कलिकावल्लरिः

**श्रीश्रील बलदेव विद्याभूषण पाद द्वारा रचित**
**स्तवमाला-विभूषण भाष्य सहित**

श्रीवृन्दाटवीनागराभ्यां नमः।

**आसीद्यस्मादुत्कलिकावल्लरिरेषा कर्कशचित्तग्रावनितान्तद्रुतिहेतुः।**
**श्रीराधागोविन्दपदाब्जव्रतदायी स श्रीरूपो भावकभूपो दयतां नः॥**

(भाष्यकार श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु सर्वप्रथम मङ्गलाचरण करते हुए कह रहे हैं—) कर्कश-चित्तरूपी शिलाको सम्पूर्ण रूपसे विगलित कर देनेवाली एवं श्रीश्रीराधागोविन्दके चरणकमलोंकी सेवाका व्रत प्रदान करनेवाली यह उत्कलिका-वल्लरी जिनसे उत्पन्न हुई है, विरहभावसे पूर्ण आतुर चित्तवाले जनोंके सम्राट्स्वरूप वे श्रील रूप गोस्वामी हमपर कृपा-वर्षण करें।

अलब्धाभीष्टस्याभीष्टोत्कण्ठया-विगलितचित्तस्य तल्लाभे स्वायोगत्व-स्फूर्त्याभ्युदित-दैन्यस्य भक्तस्य संक्रन्दोऽश्रुनिर्झरः पततीति स्तोत्रेणानेन संपाद्य तदिदं स्वस्मिन् वर्तयितुमादौ प्रतिजानीते—

**प्रपद्य वृन्दावनमध्यमेकः क्रोशन्नसावुत्कलिकाकुलात्मा।**
**उद्घाटयामि ज्वलतः कठोरां बाष्पस्य मुद्रां हृदि मुद्रितस्य॥ १ ॥**

**श्लोकानुवाद**—(अभीष्टके प्राप्त न होनेपर अभीष्ट-प्राप्तिकी उत्कण्ठासे जिसका चित्त विगलित हो जाता है और अभीष्टकी प्राप्तिमें अपनी अयोग्यताकी स्फूर्तिके कारण जिसमें दैन्यका उदय होता है, ऐसा विरही भक्त सम्यक् क्रन्दनके साथ निर्झर-अश्रु-पात करने लगता है—इस स्तोत्रके द्वारा इस भावको ज्ञापित करके स्वयंमें इसी भावका प्रवर्तन करनेके लिए कविवर श्रील रूप गोस्वामी सर्वप्रथम निश्चयपूर्वक कह रहे हैं—)

अपने अभीष्टको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठासे आकुलित चित्तके कारण श्रीवृन्दावनधामका आश्रय लेकर उच्चस्वरसे आर्त्तनाद करनेवाला एकाकी मैं अब ज्वलनशील अश्रुरूप विरह-सन्ताप द्वारा अपने हृदयमें पड़ी गाढ़ मुद्रा (छाप) को खोलकर दिखला रहा हूँ अर्थात् अभिव्यक्त कर रहा हूँ॥ १ ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—उत्कलिकाकुलात्मोत्कण्ठाव्याप्तचित्त एकोऽसावहं वृन्दावनमध्यं प्रपद्य क्रोशन्नुच्चैरार्तरावं कुर्वन् हृदि मुद्रितस्य ज्वलतो बाष्पस्य कठोरां पिण्डीभूतां मुद्रामुद्घाटयामि। इयमवस्था खलु भक्तजनस्य पुरुषार्थदात्री। *'कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना। विनानन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद्भक्त्या विनाशय॥'* इत्यादिस्मृतिभ्यः। इतः परमनुदृष्टछन्दोलक्षणं ग्रन्थबाहुल्यभयान्न लेख्यम्॥ १ ॥

**भाष्यानुवाद**—उत्कण्ठासे भरे चित्तवाला एकाकी मैं वृन्दावनधामके शरणागत होकर उच्चस्वरसे विलाप करता हुआ हृदयमें पड़ी हुई ज्वलनशील अश्रुरूप विरह-सन्तापकी गाढ़ मुद्रा (छाप) को खोलकर दिखला रहा हूँ अर्थात् अभिव्यक्त कर रहा हूँ। वस्तुतः ऐसी अवस्था भक्तजनोंको निश्चय ही पुरुषार्थ प्रदान करनेवाली

है। स्मृति शास्त्रोंमें कहा गया है—"रोमाञ्च, द्रवित-चित्त एवं आनन्दाश्रुओंकी परिपाटीसे युक्त भक्तिके बिना किस प्रकार हृदय सांसारिक वासनाओंसे शुद्ध हो सकता है।" इसके आगे दृष्टि-पथपर स्पष्ट रूपसे लक्षित होनेवाले छन्दके लक्षण ग्रन्थ-विस्तारके भयसे नहीं लिखे जा रहे हैं॥ १॥

तत्रादौ स्वशरणं वृन्दावनमर्थयति—

**अये वृन्दारण्य त्वरितमिह ते सेवनपराः**
**परामापुः के वा न किल परमानन्दपदवीम्।**
**अतो नीचैर्याचे स्वयमधिपयोरीक्षणविधे-**
**र्वरेण्यां मे चेतस्युपदिश दिशं हा कुरु कृपाम्॥ २॥**

**श्लोकानुवाद—**(अब सर्वप्रथम अपने शरणस्थान श्रीवृन्दावनधामसे प्रार्थना की जा रही हैं—) हे वृन्दारण्य! इस संसारमें तुम्हारी सेवा करनेवाले ऐसे कौन हैं, जिन्होंने शीघ्र ही परमानन्द-पदवीको प्राप्त नहीं किया हो? अतः मैं प्रणत होकर अति दीनहीन भावसे तुम्हारे निकट याचना करती हूँ कि कृपा करके मुझे ऐसे श्रेष्ठ उपायका स्वयं उपदेश कीजिये, जिससे मैं तुम्हारे अधीश्वर श्रीश्रीराधाकृष्णका दर्शन कर सकूँ॥ २॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**अये इति। अये इति विषादे। *'अये क्रोधविषादयोः'* इति हैमः। हे वृन्दारण्य, ते तव सेवनपराः के वा जनाः परमानन्दपदवीं त्वरितं नापुः। अपि तु सर्वे तेऽवापुरेव। अतो हेतोर्नीचैरतिनम्रः सन्नहं त्वां याचे। किं याचसे तत्राह—स्वयं त्वमेव मे चेतसि अधिपयो राधिकामाधवयोरीक्षणविधेर्वरेण्यां दिशमुपदिश। कृपां मयि कुरु॥ २॥

**भाष्यानुवाद—**'अये'—यह पद विषादसूचक है। हेमचन्द्र कृत कोषके अनुसार 'अये' शब्द क्रोध एवं विषाद दोनों अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। हे वृन्दारण्य! तुम्हारे सेवापरायण ऐसे कौन-से व्यक्ति हैं, जो अति शीघ्र परमानन्द पदको प्राप्त नहीं हुए हैं, अपितु वे सभी अवश्य ही उक्त पदको प्राप्त हुए हैं। इसी कारणसे अति विनम्रतापूर्वक प्रणत होकर मैं तुमसे याचना कर रही हूँ। यदि

कहो कि क्या याचना कर रही हो? इसके लिए कह रही हैं—तुम मुझपर कृपा करके स्वयं ही मेरे चित्तमें अपने अधीश्वर श्रीश्रीराधामाधवके दर्शनकी श्रेष्ठ विधिका उपदेश करो॥ २॥

अथ वृन्दारण्याधिष्ठात्रीं वृन्दामर्थयते—

**तवारण्ये देवि ध्रुवमिह मुरारिर्विहरते**
**सदा प्रेयस्येति श्रुतिरपि विरौति स्मृतिरपि।**
**इति ज्ञात्वा वृन्दे चरणमभिवन्दे तव कृपां**
**कुरुष्व क्षिप्रं मे फलतु नितरां तर्षविटपी॥ ३॥**

**श्लोकानुवाद**—(तत्पश्चात् वृन्दारण्यकी अधिष्ठात्री श्रीवृन्दादेवीसे प्रार्थना की जा रही है—) हे देवि वृन्दे! श्रुति-स्मृति आदि शास्त्र समूह यही गान करते हैं कि तुम्हारे वन अर्थात् श्रीवृन्दावनमें सदा ही श्रीमुरारि अपनी प्रेयसीके साथ नित्य विहार करते हैं। यह निश्चित रूपसे जानकर मैं तुम्हारे चरणोंमें वन्दना करती हूँ कि मुझपर ऐसी कृपा करो, जिससे मेरा तृष्णारूपी वृक्ष शीघ्रातिशीघ्र श्रेष्ठ रूपसे फलवान हो॥ ३॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—तवेति। हे देवि वृन्दे! तवारण्ये मुरारिः प्रेयस्या श्रीराधया सपरिकरया सह सदा विहरते, इति श्रुतिर्विरौति वदति—*'राधया माधव'* इत्याद्या, *'अथ गोकुलाख्ये माथुरमण्डले वृन्दावनमध्ये'* इत्याद्या च। स्मृतिश्च विरौति—*'अत्र या गोपकन्याश्च निवसन्ति ममालये। योगिन्यस्ता मया नित्यं मम सेवापरायणाः॥ द्विभुजः सर्वदा सोऽस्ति न कदाचिच्चतुर्भुजः। गोप्यैकया युतस्तत्र परिक्रीडति नित्यदा॥'* इत्याद्या। एकया सर्वमुख्यया राधयेत्यर्थः। इति ज्ञात्वा निश्चित्य तव चरणमहमभिवन्दे। त्वं कृपां कुरुष्व। त्वत्कृपया मे मम तर्षविटपी तृष्णातरुः फलतु श्रीराधिकाकृष्णावाप्तिफलवान् भवतु॥ ३॥

**भाष्यानुवाद**—हे देवि वृन्दे! श्रीमुरारि अपनी प्रेयसी श्रीराधा एवं उनके परिकरोंके साथ तुम्हारे अरण्यमें सदा विहार करते हैं। श्रुति कहती है—"राधाके साथ माधव" इत्यादि, और "गोकुल नामके मथुरामण्डलके अन्तर्गत वृन्दावनमें (नित्य विहार करते हैं)"

इत्यादि। स्मृति इत्यादि भी इसी प्रकार गान करती है—(बृहत गौतमीय तन्त्रके अन्तर्गत श्रीकृष्णके वचन—) "यहाँ मेरे आलय (वृन्दावन) में जो गोपकन्याएँ सदा निवास करती हैं। वे सभी गोपकन्याएँ नित्य-योगिनियाँ हैं अर्थात् उनका मेरे साथ कभी भी वियोग नहीं है और वे सदैव मेरी सेवा-परायण रहती हैं।" और (श्रीयमल तन्त्रमें कहा गया है—) "गोपाल सदैव द्विभुज हैं, वे कभी भी चतुर्भुजधारी नहीं है। गोपराजनन्दन श्रीकृष्ण गोपियोंमें सर्वशिरोमणि श्रीराधाके साथ युक्त होकर वहाँ नित्यकाल क्रीड़ा-विहार करते रहते हैं।" ऐसा निश्चित रूपसे जानकर अर्थात् शास्त्रोंके इन वचनोंमें दृढ़ निष्ठावान होकर मैं तुम्हारे चरणोंकी वन्दना करती हूँ। तुम मुझपर कृपा करो! तुम्हारी कृपासे मेरा तृष्णारूपी वृक्ष शीघ्र ही सुष्ठु रूपसे फलीभूत हो अर्थात् मुझे शीघ्र ही श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्राप्ति हो॥ ३॥

एवं वनाधिपां वृन्दां प्रसाद्य प्रकृते तदनुमतिं प्रार्थयते—

**हृदि चिरवसदाशामण्डलालम्बिपादौ**
**गुणवति तव नाथौ नाथितुं जन्तुरेषः।**
**सपदि भवदनुज्ञां याचते देवि वृन्दे**
**मयि किर करुणार्द्रां दृष्टिमत्र प्रसीद॥ ४॥**

**श्लोकानुवाद—**(इस प्रकार वृन्दावनाधीश्वरी श्रीवृन्दादेवीको प्रसन्न करके अब उनकी अनुमतिके लिए प्रार्थना की जा रही है—) हे गुणवति देवि वृन्दे! जिन श्रीश्रीराधागोविन्दके श्रीचरणकमलोंके दर्शनकी आशा मेरे हृदयमें चिरकालसे वास कर रही है, वे तुम्हारे ही नाथ हैं। यह दीनहीन दासी उन्हें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे उनसे प्रार्थना करने हेतु तुम्हारी आज्ञाकी शीघ्र ही याचना करती है। तुम प्रसन्न होकर मुझपर करुणासे स्निग्ध दृष्टिपात करो॥ ४॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**हृदीति। हे गुणवति कारुण्यगुणशालिनि वृन्दे देवि, तव नाथौ नाथितुमेष जन्तुः सपदि शीघ्रं भवदनुज्ञां याचते। *'द्राङ्*

*मङ्क्षु सपदि द्रुतम्'* इत्यमरः। त्वमत्र प्रार्थके मयि करुणार्द्रां दृष्टिं किरार्पय प्रसीद। त्वत्प्रसादेन विना त्वद्वशयोस्तयोः प्रसादो दुर्लभ इत्यर्थः। तव नाथौ कीदृशावित्याह—हृदि चिराद्वसत आशामण्डलस्याभिलाषवृन्दस्यालम्बा आश्रयाः पादा ययोस्तौ। यच्चरणेभ्यो ममाशाः फलिष्यन्तीति भावः॥ ४॥

**भाष्यानुवाद**—हे गुणवति अर्थात् कारुण्य गुणसे युक्त देवि वृन्दे! तुम्हारे नाथ श्रीश्रीराधागोविन्दसे प्रार्थना करनेके लिए यह दीनहीन तुम्हारी शीघ्र आज्ञाकी याचना करती है। मैं प्रार्थना करती हूँ कि प्रसन्न होकर मुझपर करुणासे स्निग्ध दृष्टि डालिये। तुम्हारी कृपाके बिना तुम्हारे वशीभूत उन श्रीश्रीराधागोविन्दकी कृपाकी प्राप्ति अति दुर्लभ है। अमरकोष (३/४/१) में कहा है—"द्राक्, मङ्क्षु, सपदि और द्रुतम् आदि शब्दोंके झटपट, तत्काल आदि अर्थ हैं।" यदि कहो कि तुम्हारे नाथ कैसे हैं? तो इसके लिए कह रही हैं—जिनके चरणकमल हृदयमें चिरकालसे वास कर रही मेरी अभिलाषाओंके आश्रय हैं अर्थात् जिन चरणकमलोंसे मेरी आशारूपी लता फलवती होगी—यह भावार्थ है॥ ४॥

**दधतं वपुरंशुकन्दलीं दलदिन्दीवरवृन्दबन्धुराम्।**
**कृतकाञ्चनकान्तिवञ्चनैः स्फुरितां चारुमरीचिसंचयैः॥ ५॥**

**श्लोकानुवाद**—हे श्रीकृष्ण! तुम्हारी कान्ति प्रफुल्लित इन्दीवर (नीलकमलों) से भी अधिक मनोहर है और हे श्रीराधे! तुम्हारी मनोहर कान्तिश्रेणीकी शोभा काञ्चनकी कान्तिको भी विनिन्दित करनेवाली है॥ ५॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—दधतमिति। 'दधतम्'—इत्यादीनां दशानां पद्यानाम् 'त्वां च' इति तदन्तिमेन पद्येनान्वयः। तत्र हे बल्लवपुरंदरात्मज, हे गोकुलवरेण्यनन्दिनि, एष जनस्त्वां च त्वां च नमन् किमपि भिक्षत इत्यस्ति। तत्र त्वां च कीदृशं, त्वां च कीदृशीम्, इत्यपेक्षायां क्रमादेकैकपदकृतं तयोर्विशेषणदानम्। दलन्ति विकसन्ति यानीन्दीवरवृन्दानि तेभ्योऽपि बन्धुरां मनोज्ञां वपुष्यंशुकन्दलीं कान्तिसंहतिं दधतं कृष्णम्। *'कन्दलं तु कलापे*

*स्यादुपरागे नवाङ्कुरे'* इति विश्वः। कृतं काञ्चनकान्तीनां वञ्चनं यैस्तथाभूतैश्चारूणां मरीचीनां संचयैर्वृन्दैः स्फुरितां दीप्तां राधाम्॥ ५॥

**भाष्यानुवाद**—'दधतम्' इत्यादि (श्लोक संख्या पाँचसे आरम्भ करके 'क्वापानुषङ्गिक' श्लोक संख्या चौदह तक) दस श्लोकोंका 'त्वां च' इत्यादि (श्लोक संख्या पन्द्रह) के साथ अन्वय करना होगा। यहाँ हे बल्लवपुरंदरात्मजका अर्थ गोपराजतनय और हे गोकुलवरेण्यनन्दिनिका अर्थ श्रीवृषभानुराजनन्दिनी है। यह दासी तुम दोनोंको नमस्कार करते हुए तुमसे कुछ याचना कर रही है। यदि कहो कि हे श्रीकृष्ण! तुम कैसे हो? तथा हे श्रीमती राधिके! तुम कैसी हो?—इसकी अपेक्षामें क्रमपूर्वक (पाँच संख्यक श्लोकसे आरम्भ करके चौदह संख्यक श्लोक तकके) दस श्लोकोंमें एक-एक पद द्वारा उन दोनोंके लिए विविध विशेषणोंका प्रयोग किया गया है। हे श्रीकृष्ण! तुम्हारी कान्ति श्रेणी विकसित हो रहे इन्दीवर (नीलकमल) समूहसे भी अधिक मनोहर रूपमें प्रकटित है। विश्वकोषके अनुसार 'कन्दलं' शब्दका अर्थ है—"कलाप (समूह), उपराग और नवाङ्कुर।" हे श्रीराधे! तुम काञ्चनकी कान्तिको भी निन्दित करनेवाली सुन्दर दीप्तिमालासे सुशोभित हो रही हो॥ ५॥

**निचितं घनचञ्चलाततेरनुकूलेन दुकूलरोचिषा।**
**मृगनाभिरुचः सनाभिना महितां मोहनपट्टवाससा॥ ६॥**

**श्लोकानुवाद**—हे श्रीकृष्ण! तुम घनी विद्युत्मालाकी कान्तिके समान उज्ज्वल पीताम्बरसे सुशोभित हो रहे हो और हे श्रीराधिके! तुम कस्तूरीकी कान्तिके समान मनोहर कृष्णवर्ण पट्टाम्बरसे सुशोभित हो रही हो॥ ६॥

**स्तवमाला-विभूषणभाष्य**—निचितमिति। घनचञ्चलाततेर्निविडविद्युच्छ्रेण्या अनुकूलेन सदृशेन दुकूलरोचिषा वसनकान्त्या निचितं व्याप्तं कृष्णम्। मृगनाभिरुचः कस्तूरीकान्तेः सनाभिना सदृशेन मोहनपट्टवाससा महितां राधाम्। *'सनाभिर्ज्ञातिसदृशोः'* इति हैमः॥ ६॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे वस्त्र घनघोर विद्युत श्रेणीके समान कान्तिसे परिव्याप्त हैं तथा हे श्रीराधे! तुम कस्तूरीकी कान्तिके समान मनोमोहक कृष्णवर्णके पट्टाम्बरसे सुशोभित हो। हेमचन्द्र कृत कोषके अनुसार सनाभिके ज्ञाति, सदृशता तथा सजातीयता इत्यादि अर्थ हैं॥ ६॥

**माधुरीं प्रकटयन्तमुज्ज्वलां श्रीपतेरपि वरिष्ठसौष्ठवाम्।**
**इन्दिरामधुरगोष्ठसुन्दरीवृन्दविस्मयकरप्रभोन्नताम् ॥ ७॥**

**श्लोकानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे श्रीअङ्गोंमें लक्ष्मीपति श्रीनारायणके श्रीअङ्गोंके सौष्ठवसे भी श्रेष्ठ उज्ज्वल माधुरी प्रकट हो रही है। हे श्रीराधिके! तुम्हारे श्रीअङ्गकी उत्कृष्ट शोभा श्रीलक्ष्मीजीसे भी अधिक मधुर व्रजसुन्दरियोंको भी विस्मित कर रही है॥ ७॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**माधुरीमिति। श्रीपतेरपि सकाशाद्वरिष्ठं सौष्ठवं प्रशंसा यस्यास्तामुज्ज्वलां माधुरीं प्रकटयन्तं त्वां कृष्णम्। इन्दिरायाः श्रियोऽपि सकाशान्मधुरस्य गोष्ठसुन्दरीवृन्दस्य विस्मयं करोति तथाभूता या प्रभा तयोन्नतां त्वां राधाम्॥ ७॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे श्रीअङ्गोंके सौष्ठवकी उज्ज्वल माधुरी लक्ष्मीपति श्रीनारायणके श्रीअङ्गसे भी श्रेष्ठ अर्थात् प्रशंसनीय रूपमें प्रकट हो रही है। हे राधिके! तुम्हारे श्रीअङ्गकी शोभनीय माधुरी उत्कर्षताको प्राप्त होकर लक्ष्मीकी कान्तिसे भी अधिक मधुर व्रजसुन्दरियोंको विस्मित कर रही है॥ ७॥

**इतरजनसुदुर्घटोदयस्य स्थिरगुणरत्नचयस्य रोहणाद्रिम्।**
**अखिलगुणवतीकदम्बचेतः प्रचुरचमत्कृतिकारिसद्गुणाढ्याम्॥ ८॥**

**श्लोकानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुम अन्यजनोंके लिए दुर्लभ स्थिर-गुण-रत्नसमूहके रोहण नामक रत्नगिरि स्वरूप हो और हे श्रीराधिके! तुम निखिल गुणवती रमणियोंके चित्तको प्रचुर रूपसे चमत्कृत करनेवाले सद्गुणोंसे सुशोभित हो॥ ८॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**इतरजनेति। इतरेषु पार्षदभिन्नेषु जनेष्विन्द्रादिष्वपि दुर्घट उदयो यस्य तथाभूतस्य स्थिरगुणरत्नचयस्य सार्वज्ञसौहार्दकारुण्यादि-गुणमणिवृन्दस्य रोहणाद्रिं त्वां कृष्णम्। अखिलानां गुणवतीकदम्बानां स्नेहसौन्दर्याद्याचितस्त्रीवृन्दानां चेतःसु प्रचुरां चमत्कृतिं कुर्वन्ति तच्छीलैः सद्गुणैः स्नेहसौन्दर्यसौहार्दादिभिराढ्यां त्वां राधाम्॥ ८॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! इतर अर्थात् पार्षदोंसे भिन्न अन्य जनोंमें, यहाँ तक कि इन्द्रादिमें भी जिन सर्वज्ञता, सौहार्द, कारुण्यादि गुणरत्नोंका उदय होना अत्यन्त कठिन है, उन स्थिर गुणरूपी मणियोंके तुम उदयगिरि हो। हे श्रीराधिके! तुम्हारे स्नेह, सौन्दर्य, सौहार्द आदि सद्गुण अखिल गुणवतियों अर्थात् स्नेह, सौन्दर्य आदिसे युक्त स्त्रियोंके चित्तको भी विपुल रूपमें चमत्कृत करते हैं॥ ८॥

**निस्तुलव्रजकिशोरमण्डलीमौलिमण्डनहरिन्मणीश्वरम् ।**
**विश्वविस्फुरितगोकुलोल्लसन्नव्ययौवतवतंसमालिकाम् ॥ ९॥**

**श्लोकानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुम व्रजके अतुलनीय किशोरमण्डलीके शिरोमणि मरकत स्वरूप हो। हे श्रीराधे! तुम इस विश्व-वरेण्य गोकुलमें समस्त युवतियोंकी शिरोभूषण स्वरूप कुसुममाला हो॥ ९॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**निस्तुलेति। निस्तुलानां निरुपमानां व्रजकिशोराणां श्रीदामसुबलादीनां या मण्डली तस्या मौलिमण्डनं हरिन्मणीश्वरं मरकतश्रेष्ठं त्वां कृष्णम्। विश्वस्मिन् विस्फुरितं यद्गोकुलं तत्रोल्लसन्नव्यं यौवतं युवतिवृन्दं श्यामलापालिकादि तस्यावतंसमालिकां त्वां राधाम्॥ ९॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! श्रीदाम, सुबलादि निरुपम व्रज-किशोरोंकी जो मण्डली है, तुम उनके शिरोमणि स्वरूप श्रेष्ठ मरकत हो। हे श्रीराधिके! अपनी उत्कर्षताके कारण इस विश्वको प्रकम्पित करनेवाला जो गोकुल है, वहाँ श्यामला, पालिका आदि उल्लसित-नवयौवन सम्पन्न युवतियोंकी तुम शिरोभूषण स्वरूप कुसुममाला हो॥ ९॥

अथ मिथो मानसिकान् गुणान् दर्शयन् विशिनष्टि—

**स्वान्तसिन्धुमकरीकृतराधं हृन्निशाकरकुरङ्गितकृष्णाम्।**
**प्रेयसीपरिमलोन्मदचित्तं प्रेष्ठसौरभहृतेन्द्रियवर्गाम्॥ १०॥**

**श्लोकानुवाद—**(अब परस्पर मानसिक गुणोंका निदर्शन करते हुए वर्णन किया जा रहा है—) हे श्रीकृष्ण! तुमने अपने चित्तरूपी सागरमें श्रीराधाको मकरी (मादा घड़ियाल) की भाँति रखा हुआ है। हे श्रीराधे! तुमने भी अपने हृदयरूपी चन्द्रमण्डलमें श्रीकृष्णको हिरणकी भाँति रखा हुआ है। हे श्रीकृष्ण! प्रेयसीके अङ्ग-परिमलसे तुम्हारा चित्त उन्मत्त रहता है। हे श्रीराधिके! प्रेष्ठके अङ्ग-सौरभसे तुम्हारी इन्द्रियाँ क्षुब्ध रहती हैं॥ १०॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**स्वान्तेति। स्वान्तसिन्धौ मकरीकृता राधा येन तम्। हृन्निशाकरे चित्तचन्द्रे कुरङ्गितां मृगतां नीतः कृष्णो यया ताम्। इति पदाभ्यामुभयोरन्योन्यमत्यासक्तिर्व्यज्यते। प्रेयस्याः परिमलेनोन्मदं चित्तं यस्य तम्। प्रेष्ठस्य सौरभेण हृत इन्द्रियवर्गो यस्यास्ताम्॥ १०॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुमने अपने चित्तरूपी सागरमें श्रीराधाको मकरीकी भाँति रखा है। हे श्रीराधिके! तुमने अपने चित्तरूपी चन्द्रमण्डलमें श्रीकृष्णको हिरणकी भाँति धारण कर रखा है। इन दोनों पदोंसे श्रीश्रीराधागोविन्दकी एक-दूसरेके प्रति अत्यधिक आसक्ति प्रकाशित हो रही है। हे श्रीकृष्ण! प्रेयसी श्रीराधाके अङ्ग-परिमलसे तुम्हारा चित्त उन्मत्त रहता है। हे श्रीराधिके! प्रियतमके अङ्ग-सौरभ द्वारा तुम्हारी इन्द्रियाँ अपहरण कर ली जाती हैं॥ १०॥

**प्रेममूर्तिवरकार्तिकदेवीकीर्तिगानमुखरीकृतवंशम् ।**
**विश्वनन्दनमुकुन्दसमज्ञावृन्दकीर्तनरसज्ञरसज्ञाम् ॥ ११॥**

**श्लोकानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुम्हारी वंशी प्रेममूर्त्ति स्वरूपिणी गोपरमणी शिरोमणि कार्तिकदेवी (ऊर्जेश्वरी) श्रीराधाका गुणगान करनेके लिए सदा बजती रहती है। हे श्रीराधिके! तुम्हारी रसना

विश्व–आह्लादक मुकुन्द श्रीकृष्णके यशोंके कीर्त्तन रसका आस्वादन करती है॥ ११॥

**स्तवमाला–विभूषण भाष्य—**प्रेममूर्तीति। प्रेममूर्तिषु ललिताद्यासु वरा श्रेष्ठा या कार्तिकदेवी श्रीराधा तस्याः कीर्तिगानाय मुखरीकृतो वंशो येन तम्। विश्वनन्दनं सर्वाह्लादकं यन्मुकुन्दस्य समज्ञावृन्दं कीर्तिकुलं तत्कीर्तनरसं जानाति तथाभूता रसज्ञा जिह्वा यस्यास्ताम्। *'यश कीर्तिः समज्ञा च'* इत्यमरः॥ ११॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! प्रेममूर्त्ति स्वरूपिणी ललितादिमें सर्वश्रेष्ठ कार्तिकदेवी श्रीराधाकी कीर्तिके गानके लिए तुम्हारी वंशी सदैव मुखरित (बजती) रहती है। हे श्रीराधिके! तुम्हारी रसना सबको आह्लादित करनेवाले मुकुन्द श्रीकृष्णके यशोंके कीर्त्तन–रसको भलीभाँति जानती है। अमरकोष (१/६/११) में कहा है कि यश, कीर्ति एवं समज्ञा समानार्थक शब्द हैं॥ ११॥

**नयनकमलमाधुरीनिरुद्धव्रजनवयौवतमौलिहृन्मरालम् ।**
**व्रजपतिसुतचित्तमीनराजग्रहणपटिष्ठविलोचनान्तजालाम् ॥ १२॥**

**श्लोकानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे नयन–कमलकी माधुरीके द्वारा व्रज–नवयुवतियोंकी शिरोमणि श्रीराधाका चित्तरूपी राजहंस निरुद्ध हो गया है। हे श्रीराधिके! तुम्हारे अतिनिपुण तिरछे चितवन रूपी जालमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका चित्तरूपी मीनराज आबद्ध हो गया है॥ १२॥

**स्तवमाला–विभूषण भाष्य—**नयनकमलेति। नयनकमलमाधुर्या निरुद्धो वशीकृतो व्रजनवयौवतमौलेः श्रीराधाया हृन्मरालश्चित्तहंसो येन तम्। व्रजपतिसुतस्य चित्तमेव मीनराजस्तस्य ग्रहणे पटिष्ठमतिनिपुणं विलोचनान्तजालं यस्यास्ताम्। *'आनायः पुंसि जालं स्यात्'* इत्यमरः। अत्र मिथो नेत्रसौन्दर्यासक्तिनिर्भरो व्यङ्ग्यः॥ १२॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रीकृष्ण! तुमने अपने नेत्र–कमलकी माधुरीसे व्रजनवयुवती शिरोमणि श्रीराधाके चित्तरूपी हंसको वशीभूत कर

रखा है। हे श्रीराधिके! व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णका चित्त ही मीनराज है, उसको आबद्ध करनेके लिए तुम्हारा कटाक्षजाल अति निपुण है। अमरकोष (३/३/२००) में कहा है कि 'आनायः' (पुल्लिङ्ग) शब्द जालके अर्थमें भी प्रयुक्त होता है। यहाँ नेत्र सौन्दर्यवशतः परस्परकी आसक्तिको व्यञ्जना वृत्तिके आधारपर व्यक्त किया गया है॥ १२॥

**गोपेन्द्रमित्रतनयाध्रुवधैर्यसिन्धु–**
**पानक्रियाकलशसंभववेणुनादम् ।**
**विद्यामहिष्ठमहतीमहनीयगान–**
**संमोहिताखिलविमोहनहृत्कुरङ्गाम् ॥ १३ ॥**

**श्लोकानुवाद**—हे श्रीकृष्ण! तुम्हारा वंशी–नादरूपी अगस्त्यमुनि श्रीराधाके अचल धैर्यरूपी सिन्धुका पान करता है। हे श्रीराधिके! तुम अखिल विद्याओंमें श्रेष्ठ वीणाके वन्दनीय गान द्वारा सम्पूर्ण भुवन–मोहनकारी श्रीकृष्णके चित्तरूपी हिरणको सम्मोहित करती हो॥ १३॥

**स्तवमाला–विभूषण भाष्य**—गोपेन्द्रेति। गोपेन्द्रमित्रस्य वृषभानोस्तनया श्रीराधा तस्या ध्रुवो यो धैर्यसिन्धुस्तस्य पानक्रियायां कलशसंभवोऽगस्त्यो वेणुनादो यस्य तम्। विद्यासु महिष्ठायाः श्रेष्ठाया महत्या वीणाया यन्महनीयमर्चनीयं गानं तेन संमोहितोऽखिल–विमोहनस्य कृष्णस्य हृत्कुरङ्गश्चित्तहरिणो यया ताम्। इति सर्वोर्ध्वया गानविद्यया मिथोऽनुरञ्जकता व्यज्यते॥ १३॥

**भाष्यानुवाद**—हे श्रीकृष्ण! कलशसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य मुनिरूपी तुम्हारा वेणुनाद गोपेन्द्र श्रीनन्दरायजीके मित्र श्रीवृषभानुकी कन्या श्रीराधाके अचल धैर्यरूपी सिन्धुका पान करनेवाला है। हे श्रीराधिके! तुम विद्याओंमें श्रेष्ठ महती वीणाके वन्दनीय गान द्वारा अखिल विमोहन श्रीकृष्णके चित्तरूपी हिरणको सम्मोहित करती हो। यहाँ सर्वोत्कृष्ट गान–विद्यासे परस्परकी अनुरञ्जकता (अनुरक्ति) सूचित हो रही है॥ १३॥

**क्वाप्यानुषङ्गिकतयोदितराधिकाख्या-**
**विस्मारिताखिलविलासकलाकलापम् ।**
**कृष्णेति वर्णयुगलश्रवणानुबन्ध-**
**प्रादुर्भवज्जडिमडम्बरसंवृताङ्गीम् ॥ १४ ॥**

**श्लोकानुवाद**—हे श्रीकृष्ण! तुम कभी भी आनुषङ्गिक रूपमें (प्रसङ्गवश) उच्चारित श्रीराधिकाका नाम श्रवण करके तत्क्षणात समस्त विलासादि कला-कलापको भूल जाते हो। हे श्रीराधिके! 'कृष्ण' इन युगल-वर्णोंको सुनने मात्रसे ही तत्क्षण तुम्हारे श्रीअङ्गोंमें सात्त्विकभाव सूचक जड़ता व्याप्त होने लगती है॥ १४॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**क्वापीति। क्वापि समये आनुषङ्गिकतयोदित-योच्चारितया राधिकाख्यया विस्मारिता अखिलानां विलासकलानां कलापाः समूहा यस्य तम्। कृष्णेत्येतस्य वर्णयुगलस्य यः श्रवणानुबन्धस्तेन प्रादुर्भवन् यो जडिमडम्बरो जाड्यविस्तारस्तेन संवृतानि व्याप्तान्यङ्गानि यस्यास्ताम्। इति नाममाधुर्येण मिथो वश्यता व्यज्यते॥ १४॥

**भाष्यानुवाद**—हे श्रीकृष्ण! किसी भी समय प्रसङ्गवशतः श्रीराधिकाका नाम उच्चारित होनेसे अखिल विलास-कलाओंके समूहको तुम भूल जाते हो। हे श्रीराधिके! 'कृष्ण' इस युगल वर्णको सुनने मात्रसे ही तुम्हारे समस्त अङ्गोंमें जड़ताका विस्तार होने लगता है। इस प्रकार यहाँ नाम-माधुर्यसे परस्परकी वश्यता सूचित हो रही है॥ १४॥

**त्वां च बल्लवपुरंदरात्मज त्वां च गोकुलवरेण्यनन्दिनि।**
**एष मूर्ध्नि रचिताञ्जलिर्नमन्भिक्षते किमपि दुर्भगो जनः॥ १५॥**

**श्लोकानुवाद**—हे गोपराजनन्दन श्रीकृष्ण! हे गोकुलवरेण्य वृषभानुराजनन्दिनि श्रीराधे! यह हतभागिन मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर तुम दोनोंको प्रमाण करते हुए कुछ भिक्षा माँगती है॥ १५॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—त्वां चेति। बल्लवपुरंदरो गोपराजः श्रीनन्दः। गोकुलवरेण्यः श्रीवृषभानुः॥ १५॥

**भाष्यानुवाद**—इस श्लोकमें 'बल्लवपुरन्दर' का अर्थ है गोपराज श्रीनन्दजी और 'गोकुलवरेण्य' का अर्थ राजा श्रीवृषभानुजी है॥ १५॥

किं भिक्षसे तत्राह—

**हन्त सान्द्रकरुणासुधाझरीपूर्णमानसह्रदौ प्रसीदतम्।**
**दुर्जनेऽत्र दिशतं रतेर्निजप्रेक्षणप्रतिभुवश्छटामपि॥ १६॥**

**श्लोकानुवाद**—(श्रीश्रीराधाकृष्णको सम्बोधन करके किस भिक्षाकी प्रार्थना की जा रही है, अब उसे कहा जा रहा है—) अहा! हे श्रीकृष्ण! हे श्रीराधिके! तुम दोनोंके मानसह्रद घनीभूत करुणामृतरूपी झरनेसे परिपूर्ण हैं। अतएव तुम इस दुर्जनके प्रति प्रसन्न होओ। तुम अपने दर्शनके प्रतिभू अर्थात् निश्चित उपाय स्वरूप रतिका एक बिन्दु मुझे प्रदान करो॥ १६॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—हन्तेति। हन्तेति हर्षे। सान्द्राभिः करुणासुधाझरीभिः कृपामृतनिर्झरैः पूर्णौ मानसह्रदौ ययोस्तौ तत्संबोधने तथा। अत्र दुर्जने मयि प्रसीदतम्। युवां रतेश्छटामपि दिशतं दत्तम्। रतेः कीदृश्या इत्याह—निजेति। युष्मद्दर्शनलग्नकभावेन गीताया इत्यर्थः। *'प्रतिभूर्लग्नकः स्मृतः'* इति हलायुधः॥ १६॥

**भाष्यानुवाद**—'हन्त' यह पद हर्षसूचक है। जिनका मानसह्रद घनीभूत कृपामृतरूपी झरनेसे परिपूर्ण है—उन श्रीश्रीराधाकृष्णके लिए यह सम्बोधन है। इस दुर्जन अर्थात् मुझपर प्रसन्न होइये। मुझे अपनी रतिका एक बिन्दु प्रदान कीजिये। यदि कहो कि यह रति कैसी है? इसके लिए कह रही हैं—आपके दर्शनोंका निश्चित आश्वासन देनेवालीके रूपमें इस रतिकी महिमा गानकी जाती है। हलायुध कोषमें कहा है—प्रतिभू और लग्नक समानार्थक शब्द है॥ १६॥

रतिकार्यमाह—

**श्यामयोर्नववयःसुषमाभ्यां गौरयोरमलकान्तियशोभ्याम्।**
**कापि वामखिलवल्गुवतंसौ माधुरी हृदि सदा स्फुरतान्मे॥ १७॥**

**श्लोकानुवाद—**(रति-कार्यके विषयमें बतलाया जा रहा है—) हे श्रीकृष्ण! हे श्रीराधिके! तुम जगत्‌में सभीके मनको हरण करनेवाली (समस्त उपादेय वस्तुओंके) शिरोभूषण स्वरूप हो। तुम दोनोंमेंसे एकजन नवीन वयसके कारण श्यामा अर्थात् उत्तम युवतियोंके लक्षणसे लक्षित और दूसरा परम शोभाके कारण श्याम अर्थात् मरकतमणिके समान उज्ज्वल है। पुनः एकजन निर्मल कान्तिके कारण प्रतप्त काञ्चनके समान गौराङ्गी और दूसरा निर्मल यशके कारण गौर अर्थात् श्वेत है। अतएव तुम्हारी इस प्रकारकी रूप-माधुरी मेरे हृदयमें सर्वदा स्फुरित हो॥ १७॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**श्यामयोरिति। हे अखिलवल्गुवतंसौ सर्वजनमनोज्ञशिरोभूषणभूतौ, वां युवयोः कापि माधुरी सुन्दरता मे हृदि सदा स्फुरतात्। वां कीदृशयोरित्याह—नववयःसुषमाभ्यां श्यामयोरिति। नवे स्तुत्ये च ते वयःसुषमे चेति। *'सुषमा परमा शोभा'* इत्यमरः। श्यामा च श्यामश्चेति 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः। एवं गौरयोरित्यत्र च। नववयसा श्यामा षोडशवार्षिकी राधा। नवसुषमया श्यामो मरकतमणिप्रख्यः कृष्ण इत्यर्थः। पुनर्वां कीदृशयोरित्याह—अमलकान्तियशोभ्यां गौरयोरिति। गौरी च गौरश्च तयोः। अमलकान्त्या गौरी कनकप्रख्या राधा। अमलयशसा गौरः शुभ्रः कृष्णः। *'गौरः पीतेऽरुणे श्वेते'* इति विश्वः॥ १७॥

**भाष्यानुवाद—**समस्त जनोंके मनको आकर्षित करनेवाली सभी वस्तुओंके शिरोभूषण स्वरूप हे श्रीश्रीराधारमण! तुम दोनोंकी कोई ऐसी माधुरी अर्थात् सुन्दरता मेरे हृदयमें सदा स्फुरित होती रहे। यदि कोई प्रश्न करे कि आप दोनों कैसे हैं? इसीके लिए 'नववयः सुषमाभ्यां श्यामयोः' इत्यादि पद कहा गया है। 'नव' का अर्थ स्तुत्य (प्रशंसनीय) है। 'नव' में द्विवचनका प्रयोग है, अतः वह नवीन वयस और नवीन सुषमा दोनोंके लिए प्रयुक्त हो

सकता है। अमरकोषके अनुसार (१/३/१७) सुषमा (स्त्रीलिङ्ग) 'अधिक शोभा' का एक नाम है। 'पुमान् स्त्रिया'—इस पाणिनीय सूत्रके आधारपर 'श्यामा च श्यामः च'—इन दोनों शब्दोंके स्थानपर एक ही शब्द 'श्यामयोः' शेष रह जानेसे एकशेष द्वन्द्व समास होता है। इसी प्रकार 'गौरयोः' शब्दको भी जानना चाहिये। अर्थात् 'गौरीश्च गौरश्च'—इन दोनों शब्दोंके स्थानपर 'पुमान् स्त्रिया' सूत्रसे 'गौरयोः' शेष रहा। नवीन वयस श्यामाका तात्पर्य सोलह वर्षीया श्रीराधासे है। नवीन सुषमासे सुशोभित श्यामका तात्पर्य मरकतमणिके समान दिखायी पड़नेवाले श्रीकृष्णसे है। यदि पुनः कहो कि तुम दोनों कैसे हो? इसके लिए कह रहे हैं—अमल कान्ति एवं यशके कारण क्रमशः गौरी एवं गौर। अमल कान्तिके कारण गौरी अर्थात् कनकके समान दिखायी देनेवाली श्रीराधा। अमल यशके कारण गौर अर्थात् श्वेत श्रीकृष्ण। शब्दकोषके अनुसार गौरके पीत, अरुण और श्वेत—ये तीन अर्थ हैं॥ १७॥

माधुरीमग्नेन त्वया किं कार्यं तत्राह—

**सर्वबल्लववरेण्यकुमारौ प्रार्थये बत युवां प्रणिपत्य।**
**लीलया वितरतं निजदास्यं लीलया वितरतं निजदास्यम्॥ १८॥**

**श्लोकानुवाद**—(परस्परकी माधुरीमें निमग्न तुम्हारे द्वारा क्या किया जाना चाहिये, इस अभिप्रायसे कहा जा रहा है—) हे श्रीकृष्ण! तुम व्रजराज श्रीनन्दके नन्दन हो। हे श्रीराधिके! तुम व्रजके वन्दनीय, व्रजवासीप्रधान श्रीवृषभानु राजाकी नन्दिनी हो। मैं तुम दोनोंको प्रणाम करके यह प्रार्थना करती हूँ कि तुम सहज ही मुझे अपना दास्य प्रदान करो! तुम सहज ही मुझे अपना दास्य प्रदान करो!॥ १८॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—सर्वेति। सर्वेषां बल्लवानां गोपानां वरेण्यौ वरणीयौ श्रीवृषभानुनन्दराजौ तयोः कुमारी च कुमारश्च तौ तत्संबोधने तथा। स्फुटमन्यत्। तथा च तादृशेन मया युवयोर्दास्यमेव कार्यमिति॥ १८॥

**भाष्यानुवाद**—'सर्वबल्लववरेण्यकुमारौ' का तात्पर्य है—समस्त गोपोंके वरेण्य श्रीनन्दरायजी एवं समस्त गोपवृन्दके वन्दनीय श्रीवृषभानु महाराजजीके क्रमशः कुमारी एवं कुमार—यह सम्बोधन श्रीश्रीराधाकृष्णके लिए प्रयुक्त हुआ है। अन्य सब स्पष्ट ही है। और भी, आर्त्तिसे भरी मुझ जैसी दीन दासीके लिए आप दोनोंका दास्य ही प्रयोजन है॥ १८॥

अथ प्रसन्नाभ्यां सकाशात्क्रमात्तयोः करुणां याचते—प्रतिपत्येति द्वाभ्याम्।

**प्रणिपत्य भवन्तमर्थये पशुपालेन्द्रकुमार काकुभिः।**
**व्रजयौवतमौलिमालिकाकरुणापात्रमिमं जनं कुरु॥ १९॥**

**श्लोकानुवाद**—(इसके बाद 'प्रणिपत्य' इत्यादि दो श्लोकोंके द्वारा प्रसन्न हुए उन श्रीयुगल-किशोरसे क्रमशः करुणाकी याचना की जा रही है—) हे पशुपालेन्द्र कुमार श्रीकृष्ण! मैं तुम्हारे श्रीचरणोंमें प्रणत होकर काकुवाणीसे यह प्रार्थना करती हूँ कि तुम मुझे व्रजरमणियोंकी शिरोमणि श्रीराधाकी करुणा-पात्री कर दो॥ १९॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—प्रणिपत्येति। हे पशुपालेन्द्रकुमार, भवन्तं प्रणिपत्य काकुभिरहमर्थये। किमर्थयसे तत्राह—व्रजेति। गोकुलयुवतिवृन्द-शिरःस्रग्भूतायाः श्रीराधाया दयाभाजनमिमं मल्लक्षणं जनं कुर्विति॥ १९॥

**भाष्यानुवाद**—हे पशुपालेन्द्रकुमार! तुम्हारे श्रीचरणोंमें प्रणत होकर मैं काकुवाणीसे तुम्हारी कृपाकी प्रार्थना करती हूँ। यदि कहो कि कैसी कृपाकी प्रार्थना कर रही हो? इसके लिए कह रही हैं—मेरे जैसी दासीको गोकुल युवतियोंकी मुकुटमणि श्रीराधाकी दयाका पात्र बना दो॥ १९॥

**भवतीमभिवाद्य चाटुभिर्वरमूर्जेश्वरि वर्यमर्थये।**
**भवदीयतया कृपां यथा मयि कुर्यादधिकां बकान्तकः॥ २०॥**

**श्लोकानुवाद**—हे ऊर्जेश्वरि श्रीराधिके! मैं तुम्हारा अभिवादन करके चाटु-वाक्योंसे यह वरदान माँगती हूँ कि बकासुरका वध करनेवाले श्रीकृष्ण मुझे तुम्हारी जानकर मुझपर अधिक कृपा करें॥ २०॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—भवतीमिति। हे ऊर्जेश्वरि कार्तिकाधिष्ठात्रि राधे, भवतीमभिवाद्य नत्वा चाटुभिर्वाक्यैर्वर्यं श्रेष्ठं वरमर्थये याचे। वरमाह—भवदीयतया त्वदीयभावेन मयि बकान्तकः कृष्णो यथाधिकां कृपां कुर्यादिति॥ २०॥

**भाष्यानुवाद**—हे ऊर्जेश्वरि अर्थात् कार्तिक मासकी अधिष्ठात्रि श्रीराधे! तुम्हें प्रणाम करके मैं चाटुवाक्योंसे श्रेष्ठ वरदानकी प्रार्थना करती हूँ। यदि कहो कि क्या वर चाहती हो? इसके लिए कह रही हैं—तुम्हारे ही भावसे अर्थात् मैं तुम्हारी दासी हूँ—तुम्हारी वस्तु हूँ, ऐसा जानकर बकासुरका वध करनेवाले श्रीकृष्ण मुझपर अत्यधिक कृपा करें॥ २०॥

अथ तत्पार्षदवर्गाभ्यां सकाशाद्दयां याचते—

**दिशि विदिशि विहारमाचरन्तः सह पशुपालवरेण्यनन्दनाभ्याम्।**
**प्रणयिजनगणास्तयोः कुरुध्वं मयि करुणां बत काकुमाकलय्य॥ २१॥**

**श्लोकानुवाद**—(इसके बाद श्रीयुगल किशोरके पार्षदवृन्दसे दयाकी याचना की जा रही है—) हे श्रीश्रीराधाकृष्णके प्रणयी पार्षदवृन्द! तुम सब श्रीश्रीराधाकृष्णके साथ सदैव इस वृन्दावनमें चारों ओर विचरण करते हो, अतः तुम सब भी मेरे दुःखकी बात सुनकर मुझपर कृपा करो॥ २१॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—दिशीति। हे तयोः प्रणयिजनगणाः। राधायाः सख्यः कृष्णस्य सखायश्चेत्यर्थः। मत्काकुमाकुलय्य श्रुत्वा मयि करुणां कुरुध्वम्। यूयं कीदृशाः? पशुपालवरेण्यनन्दनाभ्यां सह दिशि विदिशि विहारमाचरन्तः कुर्वाणाः। तयोर्लीलापरिकराभ्याम् इत्यर्थः॥ २१॥

**भाष्यानुवाद**—हे श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके प्रणयिजनों अर्थात्—हे श्रीराधाकी सखियो और हे श्रीकृष्णके सखाओ! मेरी काकुवाणीको

सुनकर तुम सब मुझपर करुणा करो। यदि कहो कि सखियाँ और सखा किस प्रकारके हैं? इसके लिए कह रहे हैं—पशुपालकोंके द्वारा वरेण्य अर्थात् वन्दनीय श्रीगोपराज नन्द एवं श्रीवृषभानुके क्रमशः नन्दन श्रीकृष्ण और नन्दिनी श्रीराधाके साथ वृन्दावनकी समस्त दिशाओंमें विहार करनेवाले उनके सखा और सखियाँ उनकी लीलाके नित्य परिकर हैं—यह अर्थ है॥ २१॥

सामान्यतोऽभ्यर्थ्य नामग्राहं तद्वर्गावभ्यर्थयते—गिरीति त्रिभिः—

**गिरिकुञ्जकुटीरनागरौ ललिते देवि सदा तवाश्रवौ।**
**इति ते किल नास्ति दुष्करं कृपयाङ्गीकुरु मामतः स्वयम्॥ २२॥**

**श्लोकानुवाद—**(सामान्य रूपसे श्रीयुगलकिशोरके समस्त परिकरोंसे प्रार्थना करनेके उपरान्त अब उन परिकरोंके नाम ग्रहण करते हुए 'गिरि' इत्यादिसे प्रारम्भ करके तीन श्लोकोंके द्वारा सखी और सखाके भेदसे युक्त दो वर्गोंसे प्रार्थना की जा रही है—) हे देवि ललिते! गिरि-कुञ्ज-कुटीरके नागरी और नागर श्रीश्रीराधाकृष्ण सदैव तुम्हारे वचनोंके अधीन हैं, इसलिए तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। अतएव तुम स्वतन्त्र भावसे मुझपर कृपा करके मुझे स्वीकार करो अर्थात् श्रीयुगल-सेवामें नियुक्त करो॥ २२॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**गिरिकुञ्जेति। हे देवि ललिते, गिरिकुञ्जकुटीरेषु नागरौ क्रीडाविदग्धौ श्रीराधिका-माधवौ सदा तवाश्रवौ वचनस्थौ भवतः। *'वचनेस्थित आश्रवः'* इत्यमरः। इति हेतोस्ते किमपि दुष्करं नास्ति। अतः स्वयं स्वातन्त्र्येण मामङ्गीकुरु॥ २२॥

**भाष्यानुवाद—**हे देवि ललिते! गिरि-निकुञ्ज-कुटीर नागरी एवं नागर अर्थात् क्रीड़ा-विदग्ध श्रीराधिका एवं श्रीमाधव सदैव तुम्हारे वचनोंके अधीन हैं। इसलिए तुम्हारे लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है, अतः तुम स्वयं स्वतन्त्र भावसे मुझे अङ्गीकार करो। अमरकोष (३/१/२४) के अनुसार 'आश्रव' शब्द 'वचनेस्थित' का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ आज्ञाकारी होता है॥ २२॥

**भाजनं वरमिहासि विशाखे गौरनीलवपुषोः प्रणयानाम्।**
**त्वं निजप्रणयिनोर्मयि तेन प्रापयस्व करुणार्द्रकटाक्षम्॥ २३॥**

**श्लोकानुवाद**—हे विशाखे! इस वृन्दावनमें तुम गौर और नील वपुको धारण करनेवाले श्रीश्रीराधामाधवके प्रणयी जनोंमें करुणाकी श्रेष्ठ पात्री हो। अतएव तुम मुझे अपने प्रणयी श्रीश्रीराधाकृष्णके करुणासे स्निग्ध कटाक्षको प्राप्त कराओ॥ २३॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—भाजनमिति। हे विशाखे, त्वमिह गोकुले गौरनीलवपुषो राधिकामाधवयोः प्रणयानां वरं श्रेष्ठं भाजनं पात्रमसि। तेन हेतुना निजप्रणयिनोस्तयोः करुणार्द्रकटाक्षं मयि प्रापयस्व॥ २३॥

**भाष्यानुवाद**—हे विशाखे! तुम इस गोकुलमें गौर तथा नील वपु श्रीश्रीराधामाधवके प्रणयी जनोंमें करुणाकी श्रेष्ठ पात्री हो। अतएव अपने प्रणयी उन दोनोंका करुणासे सिञ्चित कटाक्ष मुझे प्राप्त कराओ॥ २३॥

**सुबल बल्लववर्यकुमारयोर्दयितनर्मसखस्त्वमसि व्रजे।**
**इति तयोः पुरतो विधुरं जनं क्षणममुं कृपयाद्य निवेदय॥ २४॥**

**श्लोकानुवाद**—हे सुबल! इस व्रजमण्डलमें तुम श्रीव्रजराजकुमार एवं श्रीवृषभानुकुमारीके प्रियनर्मसखा हो। अतएव आज मेरे प्रति किञ्चित् कृपा करके मेरा दुःख वृत्तान्त उन युगल-चरणोंमें निवेदन कर दो॥ २४॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—सुबलेति। हे सुबल, व्रजेऽस्मिन् बल्लववर्यकुमारयो राधामुकुन्दयोस्त्वं प्रियनर्मसखोऽसि भवसि। इति हेतोस्तयोस्तत्कुमारयोः पुरतोऽग्रेऽमुं मल्लक्षणं जनं विधुरं दुःखितं निवेदय कृपया दयालुभावेन॥ २४॥

**भाष्यानुवाद**—हे सुबल! इस व्रजमें तुम श्रीनन्दरायजीके कुमार एवं श्रीवृषभानुकी कुमारी अर्थात् श्रीश्रीराधामुकुन्दके प्रियनर्मसखा हो। इस कारणसे उन दोनों कुमारोंके सम्मुख मुझ जैसी विरह-दुःखित दासीके दुःखको कृपया करुणापूर्ण भावसे निवेदन कर दो॥ २४॥

अथ तयोः किङ्करीरुद्दिश्याह—

**शृणुत कृपया हन्त प्राणेशयोः प्रणयोद्धुराः**
**किमपि यदयं दीनः प्राणी निवेदयति क्षणम्।**
**प्रवणितमनाः किं युष्माभिः समं तिलमप्यसौ**
**युगपदनयोः सेवां प्रेम्णा कदापि विधास्यति॥ २५॥**

**श्लोकानुवाद—**(अब श्रीश्रीराधागोविन्दकी किङ्करियोंको उद्दिष्ट करके कहा जा रहा है—) हे मेरे प्राणेश्वर श्रीश्रीराधागोविन्दके प्रेममें उन्मत्त प्रिय किङ्करीगण! यह दीन दासी विनम्र चित्तसे जो निवेदन कर रही है, अनुग्रहपूर्वक उसे क्षणभरके लिए तो सुनो। मैं तुम्हारे साथ मिलकर क्या कभी कुछ समयके लिए भी श्रीयुगलचरणोंकी प्रेम-सेवाको कर सकूँगी? ॥ २५॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**शृणुतेति। हे प्राणेशयोस्तयोः प्रणयोद्धुराः प्रेमदृप्ताः किंकर्यः, कृपया शृणुत यूयम्। किं शृणुम इति चेत्तत्राह—अयं दीनः प्राणी यत् किमपि निवेदयति। तच्च किमिति चेत्तत्राह—असौ प्राणी प्रवणितमना विनमितचित्तः सन् युष्माभिः समं तिलमपि युगपदेकस्मिन् कालेऽनयोः प्राणेशयोः सेवां प्रेम्णा कदापि विधास्यतीति॥ २५॥

**भाष्यानुवाद—**हे प्राणेश अर्थात् श्रीश्रीराधागोविन्दके प्रेममें उन्मत्त किङ्करीगण! कृपया आप सब सुनिये। क्या सुनें? इसके लिए कह रही हैं—यह दीन-हीन दासी जो कुछ निवेदन कर रही है, उसे सुनिये! यदि पुनः कहो कि क्या निवेदन कर रही हो? इसपर कह रही हैं—यह दीन-हीन दासी विनम्र चित्तसे तुम सबके साथ क्षण भरके लिए एक साथ और एक ही समयमें उन दोनों प्राणेश—श्रीश्रीराधागोविन्दकी प्रेमपूर्वक सेवा क्या कभी कर पायेगी? ॥ २५॥

अथात्मनो दौष्ट्यमनुसंदधदाह—

**क्व जनोऽयमतीव पामरः क्व दुरापं रतिभाग्भिरप्यदः।**
**इयमुल्ललयत्यजर्जरा गुरुरुत्तर्षधुरा तथापि माम्॥ २६॥**

**श्लोकानुवाद—**(अब अपने दोषका अनुसन्धान करते हुए कहा जा रहा है—) कहाँ तो मेरे जैसी अति पामर (असहाय) दासी और कहाँ जातरति भक्तजनोंके लिए भी दुर्लभ यह प्रेम-सेवा? यद्यपि मैं जानती हूँ कि मेरे जैसी दासीके लिए ऐसी प्रेममयी सेवाको प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि अति महान तृष्णा मुझे अधीर बना रही है॥ २६॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**क्वेति। अयमतीव अतिशयेन पामरो जनः क्व। रतिभाग्भिर्जातभावैरपि भक्तैर्दुरापमिदं सेवासौभाग्यं क्व। दुर्घटोऽनेन मे संबन्ध इत्यर्थः। यद्यप्येवं तथापीयमुत्तर्षधुरातितृष्णा मामुल्ललयति चपलयति। कीदृशीयमित्याह—अजर्जरा नवीना। *'जर्जरो वाच्यवज्जीर्णे'* इति विश्वः। गुरुर्महतीत्यर्थः॥ २६॥

**भाष्यानुवाद—**कहाँ तो अति पामर (असहाय) यह दासी और कहाँ जातरति भक्तोंके लिए भी दुर्लभ ऐसा सेवा-सौभाग्य? अर्थात् ऐसे सेवा-सौभाग्यसे जुड़ पाना—उसे प्राप्त कर पाना मेरे जैसी दासीके लिए बहुत कठिन है। ऐसा होनेपर भी यह अति तीव्र तृष्णा मुझे चञ्चल बना रही है। यदि कहो कि वह तृष्णा कैसी है? इसके लिए कहती हैं—'अजर्जरा' अर्थात् नवीना। विश्वकोषमें कहा है—"जर्जरका पर्यायवाची शब्द जीर्ण है।" 'गुरु' अर्थात् महान्। (भावार्थ यह है कि वह महान् तृष्णा नव-नवायमान रूपमें प्रकट हो रही है।)॥ २६॥

स्वस्य योग्यतां ज्ञात्वापि पुनरप्यतितृष्णया प्रार्थयति—

**ध्वस्तब्रह्ममरालकूजितभरैरूर्जेश्वरीनूपुर-**
**क्वाणैरूर्जितवैभवस्तव विभो वंशीप्रसूतः कलः।**
**लब्धः शस्तसमस्तनादनगरीसाम्राज्यलक्ष्मीं परा-**
**माराध्यः प्रमदात्कदा श्रवणयोर्द्वन्द्वेन मन्देन मे॥ २७॥**

**श्लोकानुवाद—**(अपनी योग्यताको जानकर भी पुनः अति तृष्णापूर्वक प्रार्थना की जा रही है—) हे विभो श्रीकृष्ण! ब्रह्म-मराल अर्थात् ब्रह्माजीके वाहन राजहंसके कूजनको निन्दित

करनेवाली श्रीराधाजीकी नूपुर–ध्वनिसे मिश्रित तुम्हारी उस वंशी–ध्वनिको मैं कब अपने इन दोनों मन्द कानोंसे सुन सकूँगी, जिस ध्वनिने समस्त नाद–नगरीकी श्रेष्ठ साम्राज्य–लक्ष्मीको भलीभाँति प्राप्त कर लिया है। तात्पर्य यह है कि कानोंको आनन्द प्रदान करनेवाली जितनी भी श्रेष्ठसे श्रेष्ठ ध्वनियाँ हो सकती है, उन सबकी सार–सम्पत्ति है—श्रीराधाजीकी नूपुरकी ध्वनिसे समृद्ध श्रीश्यामसुन्दरकी यह वंशीध्वनि॥ २७॥

**स्तवमाला–विभूषण भाष्य—**ध्वस्तेति। हे विभो भगवन्, वंशीप्रसूतः कलो मधुरध्वनिर्मे श्रवयोर्द्वन्द्वेन कदाराध्यः स्यात्। स कीदृशः? ऊर्जेश्वरीनूपुरक्वाणैः श्रीराधामञ्जीरध्वनिभिरूर्जितवैभवः समृद्धः। तत्क्वाणैः कीदृशैः? ध्वस्तोऽधः कृतो ब्रह्ममरालस्य चतुराननस्यहंसस्य कूजितभरो यैस्तैः। पुनः स कीदृशः? शस्ता श्लाघ्या या समस्ता नादरूपा नगरी तस्यां या साम्राज्यलक्ष्मीरधिकासंपत्तां परां लब्धः। राधिकानूपुरझणत्कारैः सह रासे तव वेणुनादं कदा श्रोष्यामीत्यर्थः॥ २७॥

**भाष्यानुवाद—**'हे विभो!' अर्थात् हे भगवन्! वंशीसे उत्पन्न कल अर्थात् मधुर–ध्वनिको मैं कब अपने दोनों कानोंका आराध्य बना पाऊँगी अर्थात् कब उसका कानोंके द्वारा सेवन कर पाऊँगी? यदि कहो कि वह मधुर–ध्वनि कैसी है? इसके लिए कह रही हैं—वह ध्वनि ऊर्जेश्वरी श्रीराधाकी नूपुर ध्वनिसे समृद्ध है। पुनः वह नूपुर ध्वनि कैसी है? उस नूपुर ध्वनिके द्वारा ब्रह्म–मराल अर्थात् चतुरानन ब्रह्माजीके वाहन राजहंसका कूजन भी तिरस्कृत हो जाता है। पुनः वह वंशी–नूपुर मिश्रित ध्वनि कैसी है? प्रशंसनीय है, जिसने समस्त नादरूपी नगरीकी साम्राज्य–लक्ष्मी अर्थात् श्रेष्ठ अधिकार सम्पत्तिको प्राप्त कर लिया है। तात्पर्य यह है कि श्रीराधिकाकी नूपुरकी झङ्कारके साथ रासमण्डलमें तुम्हारा वेणुनाद मैं कब सुन पाऊँगी?॥ २७॥

**स्तम्भं प्रपञ्चयति यः शिखिपिञ्छमौलि–**
**वेणोरपि प्रवलयन्स्वरभङ्गमुच्चैः।**

**नादः कदा क्षणमवाप्स्यति ते महत्या**
**वृन्दावनेश्वरि स मे श्रवणातिथित्वम्॥ २८॥**

**श्लोकानुवाद**—हे वृन्दावनेश्वरि श्रीराधिके! शिखि-पिच्छमौलि श्रीकृष्णकी वंशीके स्वरोंको भङ्ग तथा स्तब्ध करनेवाली तुम्हारी उच्च वीणा-ध्वनि कब मेरे श्रवण-गोचर होगी?॥ २८॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—स्तम्भमिति। हे वृन्दावनेश्वरि, ते तव महत्या वीणायाः स नादो मे श्रवणातिथित्वं कर्णगोचरतां कदावाप्स्यति। स कीदृगित्याह—यः शिखिपिञ्छमौलिवेणोः स्वरभङ्गं प्रवलयन् कुर्वन् स्तम्भं प्रपञ्चयति। यन्नादश्रवणमोहितस्य कृष्णस्य वेणोर्वैस्वर्यं लभते, ततः स्तम्भते चेत्यर्थः॥ २८॥

**भाष्यानुवाद**—हे वृन्दावनेश्वरि! तुम्हारी 'महती' वीणाकी ध्वनि कब मेरे कर्ण-गोचर होगी? यदि कहो कि वह ध्वनि कैसी है? इसके लिए कह रही हैं—वह ध्वनि शिखि-पिच्छमौलि श्रीकृष्णकी वेणुके स्वरको भङ्ग करके उसे स्तम्भित कर देती है। जिस वीणाकी ध्वनिके श्रवणसे मोहित हुए श्रीकृष्णका वेणुनाद पहले तो बेसुरेपनको प्राप्त करता है तथा फिर लड़खड़ाते हुए धीरे-धीरे रुक जाता है। क्या मैं कभी क्षणमात्रके लिए भी तुम्हारी उस वीणाकी ध्वनिको श्रवणकर पाऊँगी—यही अर्थ है॥ २८॥

अथोभयोः संभूय गानं श्रोतुमर्थयते—

**कस्य संभवति हा तदहर्वा यत्र वां प्रभुवरौ कलगीतिः।**
**उन्नमन्मधुरिमोर्मिसमृद्धा दुष्कृतं श्रवणयोर्विधुनोति॥ २९॥**

**श्लोकानुवाद**—(इसके बाद दोनोंके द्वारा मिलकर किये गये गानको सुननेके लिए याचना की जा रही है—) हे प्रभुवर श्रीश्रीराधागोविन्द! क्या कभी मेरे जीवनमें ऐसा दिन आयेगा, जिस दिन तुम दोनों मिलकर सुमधुर सङ्गीतका गान करोगे तथा उत्कृष्ट माधुर्यकी तरङ्गसे पूर्ण उस गानको सुनकर मेरी श्रवणेन्द्रियोंकी दुष्कृति दूर होगी?॥ २९॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—कस्येति। हे प्रभुवरौ, कस्य जनस्य तदहः स दिवसः संभवति घटते। वेति वाक्यालंकारे। यत्राह्नि वां युवयोः कलगीतिर्युगपदभ्युदिता श्रवयोर्दुष्कृतं विधुनोति नाशयति। सा किंभूता। उन्नमता उच्चीभवता मधुरिमोर्मिणा माधुर्यतरङ्गेन समृद्धा॥ २९॥

**भाष्यानुवाद**—हे प्रभुवरद्वय श्रीश्रीराधागोविन्द! इस दासीका वह दिन कब आयेगा, जिस दिन तुम दोनोंकी कल-गीति (सुमधुर सङ्गीत) एकसाथ उदित होकर मेरे कानोंकी दुष्कृति अर्थात् सांसारिक कथा श्रवणरूपी दोषका नाश करेगी? 'वा' पदका प्रयोग वाक्य-अलङ्कारके लिए है [विकल्प सूचकके अर्थमें नहीं]। यदि कहो कि वह सुमधुर-सङ्गीत कैसा है? इसके लिए कह रही हैं—वह ऊँची-ऊँची माधुर्यमयी-तरङ्गोंसे समृद्ध है॥ २९॥

अथोभयोरङ्गसौरभ्यानुभवायाभ्यर्थयते—

**परिमलसरणिर्वां गौरनीलाङ्गराज-**
**न्मृगमदघुसृणानुग्राहिणी नागरेशौ।**
**स्वमहिमपरमाणुप्रावृताशेषगन्धा**
**किमिह मम भवित्री घ्राणभृङ्गोत्सवाय॥ ३०॥**

**श्लोकानुवाद**—(इसके बाद श्रीश्रीराधागोविन्दके अङ्ग-सौरभके अनुभवके लिए प्रार्थना की जा रही है—) हे नागरराज श्रीकृष्ण! हे नागरिमणि श्रीराधिके! जो अपनी महिमाके लेशमात्र द्वारा समस्त सुगन्धित सामाग्रियोंकी माधुरीको पराजित करती है, इस प्रकारकी कस्तूरी और कुङ्कुमसे सुवासित (लेपित) आपके गौर और नील श्रीअङ्गोंकी गन्धका आघ्राण करके मेरा घ्राणेन्द्रियरूप भ्रमर कब आनन्दित होगा?॥ ३०॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—परिमलेति। हे नागरेशौ, वां युवयोः परिमलसरणिः सौरभ्यपरम्परा मम घ्राणभृङ्गोत्सवाय भवित्री। *'सरणिः श्रेणिवर्त्मनोः'* इति विश्वलोचनकारः। कीदृशीत्याह—गौरनीलयोरङ्गयोः क्रमाद्राजतीये मृगमदघुसृणे कस्तूरीकुङ्कुमे तयोरनुग्राहिणी विचित्रसौरभ्यदात्रीत्यर्थः। पुनः कीदृशीत्याह—स्वेति स्फुटार्थम्॥ ३०॥

**भाष्यानुवाद—**हे नागरराज! हे नागर सुन्दरी! आप दोनोंकी सौरभ परम्परा (सुगन्ध-धारा) कब मेरे घ्राणरूप भ्रमरके लिए उत्सव-स्वरूप होगी? विश्वलोचनकारके अनुसार 'सरणि' के दो अर्थ हैं—श्रेणी एवं वर्त्म। यदि कहो कि वह सौरभ-धारा कैसी है? इसके लिए कह रही हैं—तुम्हारे गौर एवं नील अङ्गोंकी सुगन्धने तुम दोनोंके अङ्गोंपर क्रमशः सुशोभित कस्तूरी एवं कुङ्कुम (केसर) पर अनुग्रह करके उनकी सुगन्धिको भी अपनेमें मिलाकर विचित्रताको प्राप्त किया है। पुनः वह सौरभ-धारा कैसी है? उस सुगन्ध-धाराने स्वयं प्रस्फुटित होकर अपनी महिमाके लेशमात्रसे अशेष गन्धको आच्छादित कर दिया है॥ ३०॥

अतिसान्निध्यभाग्यमिदं मम दुर्घटं दूरादेव वां साक्षात्कारो भवतादित्याह—

**प्रदेशिनीं मुखकुहरे विनिक्षिपञ्जनो मुहुर्वनभुवि फूत्करोत्यसौ।**
**प्रसीदतं क्षणमधिपौ प्रसीदतं दृशोः पुरः स्फुरतु तडिद्घनच्छविः॥ ३१॥**

**श्लोकानुवाद—**(अत्यन्त निकटताका सौभाग्य प्राप्त करना तो अति दुर्लभ है, अतः दूरसे ही दोनोंके साक्षात्कार हेतु प्रार्थना की जा रही है—) हे नाथ श्रीकृष्ण! हे वृन्दावनेश्वरि श्रीराधिके! मैं इस वृन्दावनमें अपने मुखमें तर्जनी अङ्गुली डालकर पुनः-पुनः फुत्कार करते हुए रोदन कर रही हूँ। अतएव क्षणकालके लिए ही तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हों और विद्युत्-लता एवं नवीन मेघके समान अपनी रूप-माधुरी मेरे नयनोंके गोचर कराओ॥ ३१॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**प्रदेशिनीमिति। अङ्गुष्ठानन्तराङ्गुली प्रदेशिनी तर्जनी चोच्यते। *'तर्जनी स्यात्प्रदेशिनी'* इत्यमरः। तां मुखमध्ये विनिक्षिपन्नर्पयन्नयं जनः फूत्करोति। स्फुटार्थमन्यत्। तडिद्घनयोरिव युवयोः छविः कान्तिः॥ ३१॥

**भाष्यानुवाद—**अङ्गुष्ठके बादवाली अङ्गुलीको प्रदेशिनी एवं तर्जनी कहा जाता है। अमरकोष (२/६/८१) में कहा है—"तर्जनी एवं प्रदेशिनी अँगूठेके पासवाली अङ्गुलीके दो नाम हैं।" उसे

मुखमें डालकर यह दासी फूत्कार करती है अर्थात् सिसकती है। अन्य पदोंका अर्थ स्पष्ट ही है। तुम दोनोंकी छवि अर्थात् कान्ति क्रमशः विद्युत् एवं मेघके समान है॥ ३१॥

पादनखरान्दिदृक्षुः प्रार्थयते—

**व्रजमधुरजनव्रजावतंसौ किमपि युवामभियाचते जनोऽयम्।**
**मम नयनचमत्कृतिं करोतु क्षणमपि पादनखेन्दुकौमुदी वाम्॥ ३२॥**

**श्लोकानुवाद—**(चरण-नख-समुदायको देखनेकी इच्छासे प्रार्थना की जा रही है—) हे नाथ श्रीकृष्ण! हे श्रीमती राधिके! तुम दोनों व्रजमण्डलमें स्थित मधुरमूर्त्ति समस्त नर-नारियोंके शिरोभूषण हो, अतएव मैं तुम्हारे निकट कुछ प्रार्थना कर रही हूँ। तुम दोनोंके चरणकमलके नख-चन्द्रकी चाँदनी (छटा) से क्षणभरके लिए मेरे नयन-युगल चमत्कृत हों॥ ३२॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**व्रजेति। स्फुटार्थम्॥ ३२॥

**भाष्यानुवाद—**अर्थ स्पष्ट ही है॥ ३२॥

अकस्मान्मिलितौ तौ स्वामिनौ दिदृक्षुः प्रार्थयते—

**अतर्कितसमीक्षणोल्लसितया मुदाश्लिष्यतो-**
**र्निकुञ्जभवनाङ्गणे स्फुरितगौरनीलाङ्गयोः।**
**रुचः प्रचुरयन्तु वां पुरटयूथिकामञ्जरी-**
**विराजदलिरम्ययोर्मम चमत्कृतिं चक्षुषः॥ ३३॥**

**श्लोकानुवाद—**(अकस्मात् परस्पर मिले उन दोनों—स्वामी एवं स्वामिनीको देखनेकी इच्छासे प्रार्थना की जा रही है—) हे श्रीश्रीराधागोविन्द! जिस समय निकुञ्ज-भवनके प्राङ्गणमें तुम दोनों परस्परके अकस्मात् दर्शनसे उत्पन्न हुए प्रचुर आनन्दके कारण प्रीतिसे भरकर एक-दूसरेका आलिङ्गन करते हो, उस समय जग-मगाते गौराङ्ग और नीलाङ्ग दोनों मिलित होकर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो स्वर्ण-यूथिका पुष्पकी मञ्जरीपर मधुपानमें रत कृष्णवर्णका भ्रमर बैठा हो। इस प्रकार मिलित आपके अङ्गोंकी

सुन्दर शोभा मेरे नयन–युगलकी चमत्कृतिका अतिशय विस्तार करे॥ ३३॥

**स्तवमाला–विभूषण भाष्य—**अतर्कितेति। वां युवयोः रुचः प्रभाः मम चक्षुषश्चमत्कृतिं प्रचुरयन्तु प्रचुरां कुर्वन्तु। क्वेत्याह—निकुञ्जभवनाङ्गणे कुञ्जमन्दिरचत्वरे इत्यर्थः। वां कीदृशयोः? अतर्कितमाकस्मिकं यन्मिथः समीक्षणं तस्मात्समुल्लसितया प्रवृद्धया मुदा प्रीत्याश्लिष्यतोरालिङ्गतोः। पुनः कीदृशयोः? स्फुरितगौरनीलाङ्गयोः। तावुपमिन्वन्विशिनष्टि—पुरटयूथिकामञ्जरी च तस्यां विराजन्नलिश्च तयोरिव रम्ययोः॥ ३३॥

**भाष्यानुवाद—**तुम दोनोंके अङ्गोंकी सुन्दर शोभा मेरी आँखोंको प्रचुर रूपमें चमत्कृत करें। यदि कहो कि किस स्थानपर? इसके लिए कहती हैं—निकुञ्ज–भवनके प्राङ्गणमें। यदि प्रश्न हो कि तुम दोनों कैसे हो? इसके लिए कह रही हैं—अकस्मात् परस्परका जो दर्शन होता है, उससे अतिशय उल्लसित होनेके कारण, प्रीतिसे भरकर एक दूसरेको आलिङ्गन करते हुए। पुनः तुम दोनों कैसे हो? जगमगाते गौर एवं नील अङ्गके। तुम दोनोंकी उपमा देकर पुनः तुम्हारी विशेषता बतलाते हुए कहती हैं—तुम दोनोंके श्रीअङ्गोंकी शोभा स्वर्ण जूही मञ्जरी (बौर) और उसपर विराजित भ्रमरकी सुन्दरताके समान अत्यन्त रमणीय है॥ ३३॥

स्वायोग्यतामनुभवन्ननुतपति—

**साक्षात्कृतिं बत ययोर्न महत्तमोऽपि**
**कर्तुं मनस्यपि मनाक्प्रभुतामुपैति।**
**इच्छन्नयं नयनयोः पथि तौ भवन्तौ**
**जन्तुर्विजित्य निजगार भियं ह्रियं च॥ ३४॥**

**श्लोकानुवाद—**(अपनी अयोग्यताका अनुभव करते हुए अनुताप–पूर्वक याचना की जा रही है—) हे श्रीश्रीराधागोविन्द! कैसा आश्चर्य है? सर्वसाधनसे सम्पन्न होनेपर भी महात्मागण अपने मनमें क्षणकालके लिए भी तुम्हारे जिन दर्शनोंको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते, अति दुर्वासनाग्रस्त मन्दबुद्धि मैं इन नेत्रोंसे तुम्हारे

उन्हीं दर्शनोंकी प्राप्तिकी इच्छा कर रही हूँ। अहो! क्या मैंने लज्जा-भयादि सबकुछ खो दिया है?॥ ३४॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—साक्षादिति। बतेति विस्मये। महत्तमः सर्वसाधनसंपन्नोऽपि साधुवर्यो मनस्यपि ययोर्ह्लादिनीविज्ञानघटनयोः सर्वेश्वरयोर्मनागल्पां साक्षात्कृतिं कर्तुं प्रभुतां नोपैति समर्थो न भवति। तौ भवन्तौ नयनयोः पथि इच्छन् नेत्रगोचरौ चिकीर्षन्नयं प्राकृतकरणकलेवरोऽतिदुर्वासनो मन्दधीर्मल्लक्षणो जन्तुर्भियं ह्रियं च विजित्य निजगार गिलितवान्। निर्भयो निर्लज्जश्चाह-मित्यर्थः॥ ३४॥

**भाष्यानुवाद**—'बत' विस्मयके अर्थमें है। जिन सर्वेश्वरों श्रीश्रीराधाकृष्णका साक्षात्कार करनेसे ह्लादिनी-विज्ञानका घटन अर्थात् आनन्दका अनुभव होता है, समस्त साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी श्रेष्ठ साधु मनमें भी उनका थोड़ा-सा साक्षात्कार करनेका सामर्थ्य प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसे तुम दोनोंके इन नेत्रोंसे दर्शन करनेकी इच्छा करनेवाली, प्राकृत इन्द्रियों और देहसे युक्त, अति दुर्वासनामय, मन्द-बुद्धि मेरे जैसी दीन-हीन दासी भय और लज्जाको पराजितकर मानो निगल गयी है। अर्थात् अयोग्य होनेपर भी मैं निर्भय और निर्लज्ज होकर यह सब कह रही हूँ॥ ३४॥

ईदृक्प्रार्थने स्वस्यातिमूर्खतामुक्त्वाप्यथ तत्र तन्माधुर्याः कारणतामाह—

**अथवा मम किं नु दूषणं बत वृन्दावनचक्रवर्तिनौ।**
**युवयोर्गुणमाधुरी नवा जनमुन्मादयतीह कं न वा॥ ३५॥**

**श्लोकानुवाद**—(इस प्रकारकी प्रार्थना करनेमें अपनी अति मूर्खता बतलाकर भी अब वैसी प्रार्थनाओंमें श्रीयुगलकी माधुरी ही कारण है, इसी को बतलाया जा रहा है—) अथवा उपरोक्त प्रार्थनाएँ करनेमें मेरा दोष ही क्या है? हे वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण! हे वृन्दावनेश्वरि श्रीराधे! तुम्हारी नित्य-नवीन गुण-माधुरी भला किसको उन्मादित नहीं करती? (अर्थात् तुम दोनोंकी गुण-माधुरीकी मधुमें मत्त होकर ही मैं ऐसी प्रार्थनाएँ कर रही हूँ)॥ ३५॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**अथवेति। गुणमाधुरी दीनोद्धारकतापतित-पावनतादीनां गुणानां रुचिरता, नवा नित्यनूतना कं वा जनं नोन्मादयति। रम्ये वस्तुनि रङ्कस्य लोभो वस्तुरम्यत्वहेतुक इति भावः॥ ३५॥

**भाष्यानुवाद—**तुम दोनोंकी गुण-माधुरी अर्थात् दीनोंका उद्धार करनेवाले, पतितोंको पवित्र करनेवाले आदि गुणोंकी मधुरता और तुम्हारी नित्य-नवीनता किसे उन्मादित नहीं करती? रमणीय वस्तुकी मनोहरताके कारण रङ्क (दरिद्र) का भी उसके प्रति लोभ होना स्वाभाविक ही है। अतएव मुझ दीनकी उन्मादकताका कारण भी वस्तुकी रमणीयता ही है—यह भाव है॥ ३५॥

**अहह समयः सोऽपि क्षेमो घटेत नरस्य किं**
**व्रजनटवरौ यत्रोद्दीप्ता कृपासुधयोज्ज्वला।**
**कृतपरिजनश्रेणिचेतश्चकोरचमत्कृति**
**र्व्रजति युवयोः सा वक्त्रेन्दुद्वयी नयनाध्वनि॥ ३६॥**

**श्लोकानुवाद—**हे व्रजके नटवर शेखरिणी श्रीकृष्ण! हे व्रजकी नटनियोंकी शिरोमणि श्रीराधे! क्या कभी मेरे जीवनमें ऐसा शुभावसर आयेगा कि जब अति सुन्दर, कृपामृतसे परिपूर्ण और सखियोंके चित्त-चकोरको विस्मित कर देनेवाले तुम दोनोंके मुखचन्द्र मेरे नयन-पथके पथिक बन जायेंगे?॥ ३६॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**[१]

**प्रियजनकृतपार्ष्णिग्राहचर्योन्नताभिः**
**सुगहनघटनाभिर्वक्रिमाडम्बरेण।**
**प्रणयकलहकेलिक्ष्वेलिभिर्वामधीशौ**
**किमिह रचयितव्यः कर्णयोर्विस्मयो मे॥ ३७॥**

---

[१] चौखम्बा प्रकाशन वारणसीसे प्रकाशित काव्यमालाके अन्तर्गत स्तवमालाके श्रीउत्कलिकावल्लरिः इस (काव्य) में प्रस्तुत श्लोकके उपलब्ध न होनेके कारण इसकी टीका भी उपलब्ध नहीं हो पायी। किन्तु, अन्य संस्करणोंमें इस श्लोकको देखकर हमने अपने प्रस्तुत संस्करणमें उसे स्वीकार किया है।

**श्लोकानुवाद**—हे नाथ श्रीकृष्ण! हे श्रीमति राधिके! तुम दोनों परस्परके पक्षगणों सहित तुमुल विवाद करते हो और तुम सभीकी परस्परके प्रति वक्रोक्तिके कारण जिस विवादका मर्म अति दुर्बोध्य है, तुम दोनों अपने उस प्रणय-कलहरूप केलि-कौतुकको श्रवण कराके मेरी श्रवणेन्द्रियोंको कब चमत्कृत करोगे?॥ ३७॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—प्रियजनेति। हे अधीशौ, वां युवयोः प्रणयकलहकेलिक्ष्वेलिभिर्मे कर्णयोर्विस्मयः किं रचयितव्यः। किमिति प्रश्ने। प्रेमकलहरूपायाः केलिषु क्ष्वेल्यः कौतुकानि ताभिरित्यर्थः। कीदृशीभिः? परिजनैः कृता या पार्ष्णिग्राहचर्या साहाय्यकिया तयोन्नताभिः प्रवृद्धाभिः। पुनः कीदृशीभिः? वक्रिमाडम्बरेण सुगहनघटनाभिर्नैविड्यं नीताभिरित्यर्थः॥ ३७॥

**भाष्यानुवाद**—हे अधीश्वर! हे अधीश्वरी! तुम दोनोंकी प्रेम-कलहरूप केलिकौतुक-श्रेणी क्या कभी मेरे कानोंमें विस्मय उत्पन्न करेगी? 'किम्' शब्दका प्रयोग प्रश्नके रूपमें किया गया है। यदि कहो कि वह प्रेम-कलह कौतुक कैसा है? इसके लिए कह रही हैं—परिजनोंके द्वारा की गयी सहायतासे अत्यन्त वर्द्धित हुआ है। पुनः वह प्रेम-कलह कैसा है? वक्र कोलाहल युक्त रहस्यपूर्ण क्रियाकलापके द्वारा निविड़ताको प्राप्त है॥ ३७॥

**निभृतमपहृतायामेतया वंशिकायां**
**दिशि दिशि दृशमुक्तां प्रेर्य संपृच्छमानः।**
**स्मितशबलमुखीभिर्विप्रलब्धः सखीभि-**
**स्त्वमघहर कदा मे तुष्टिमक्ष्णोर्विधत्से॥ ३८॥**

**श्लोकानुवाद**—हे अघहर श्रीकृष्ण! श्रीराधिका जब एकान्तमें तुम्हारी वंशी हरण कर लेंगी, तब तुम "मेरी वंशी किसने ली? मेरी वंशी किसने चोरी की?" इस प्रकार इधर-उधर जिज्ञासा करते-करते अपनी वंशीको ढूँढ़ोगे। उस समय श्रीराधिकाके पक्षकी एक सखी—"तुम्हारी वंशी इसने ली है," ऐसा कहकर अपने ही पक्षकी किसी दूसरी सखीकी ओर इङ्गित करेगी और तब तुम उस निर्दोष सखीके साथ कलह करोगे और इङ्गित

करनेवाली सखियाँ "धूर्तको ठग लिया" कहकर हँसती रहेंगी। उस समय तुम्हारे मुख पर प्रकाशित होनेवाले भावोंको देखकर मेरे नयन-युगल कब परितृप्त होंगे? ॥ ३८ ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**निभृतमिति। हे अघहर, त्वं मेऽक्ष्णोस्तुष्टिं कदा विधत्से करिष्यसि। कीदृशः सन्नित्यपेक्ष्याह—निभृतं यथा स्यात्तथा। एतया श्रीराधया वंशिकायामपहृतायां सत्यां दिशि दिशि प्रतिदिशमुक्तां दृशं प्रेर्य कया मे वंशी हृतेति संपृच्छमानः परिपृच्छन् तत्र यया वंशी न हृता तां सूचयतीभिः सखीभिर्विप्रलब्धो वञ्चितः। कीदृशीभिः? स्मितेन शबलानि चित्राणि मुखानि यासां ताभिः। धूर्तराजोऽयमाभिः सम्यग्वञ्चित इति त्वद्दर्शनान्मदक्ष्णोः परितोषः ॥ ३८ ॥

**भाष्यानुवाद—**हे अघहर (पापका हरण करनेवाले)! तुम मेरे नेत्रोंको कब सन्तुष्टि प्रदान करोगे? यदि कहो कि किस प्रकारसे सन्तुष्टि प्रदान करूँ? इसके लिए कह रही हैं—एकान्त (निभृत-निकुञ्ज) में जैसी अवस्थामें हो, उस अवस्थामें। (ऐसा कहनेके बाद स्पष्ट करते हुए कह रही हैं) श्रीराधाके द्वारा तुम्हारी वंशीका अपहरण कर लिये जानेपर जब तुम सभी दिशाओंमें इधर-उधर देखते हुए "किसने मेरी वंशी चुरा ली है?"—इस प्रकार पूछोगे, तब वहाँ जिसके द्वारा वंशी नहीं चुरायी गयी है—उसी सखीकी ओर इङ्गित करके सखियाँ तुम्हें वञ्चित करेंगी। यदि कहो कि किस प्रकारकी सखियोंके द्वारा तुम वञ्चित होओगे? मुसकानके कारण जिनके मनोहर-मुखोंने विचित्र रूपोंको धारण कर लिया है, उन सखियोंके द्वारा। अतः यह धूर्त्तराज भी सखियोंके द्वारा अच्छी प्रकारसे ठग लिया गया। यह जानकर तुम्हारी उस समयकी अवस्थाके दर्शनसे मेरे नेत्र कब परितृप्त होंगे? ॥ ३८ ॥

**क्षतमधरदलस्य स्वस्य कृत्वा त्वदाली-**
**कृतमिति ललितायां देवि कृष्णे ब्रुवाणे।**
**स्मितशबलदृगन्ता किंचिदुत्तम्भितभ्रू-**
**र्मम मुदमुपधास्यत्यास्यलक्ष्मीः कदा ते॥ ३९ ॥**

**श्लोकानुवाद—**हे देवि श्रीराधिके! श्रीकृष्ण अपने ही दाँतोंसे अपने अधर-बिम्बको क्षत (काट) करके जिस समय ललिताके निकट कहेंगे—"हे ललिते! देखो, तुम्हारी सखी श्रीराधिकाने मेरा अधर-क्षत कर दिया है।" श्रीकृष्णकी ऐसी बात सुनकर तुम उस समय मन्द मुसकानके साथ भ्रूकुटियुक्त तिरछी-चितवनसे उन्हें निहारोगी। उस समय अपने मुखकी वैसी शोभाका दर्शन कराके तुम मुझे कब परितृप्त (आनन्दित) करोगी?॥ ३९॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**क्षतमिति। हे देवि श्रीराधे, स्वस्याधरदलस्य स्वदशनाभ्यां क्षतं कृत्वा ललितायां त्वदाल्यां राधयैतत्क्षतं कृतमिति कृष्णे ब्रुवाणे कथयति सति ते तवास्यलक्ष्मीर्मुखशोभा मम मुदं कदोप समीपे आधास्यति मयि तामर्पयिष्यतीत्यर्थः। कीदृशी सा? स्मितेन शबलश्चित्रो दृगन्तो यस्याः सेति कृष्णे महाविदूषकत्वं किंचिदुत्तम्भितभ्रूरिति मृषाभाषिणि तस्मिन् कोपश्च व्यज्यते॥ ३९॥

**भाष्यानुवाद—**हे देवि श्रीराधे! अपने अधर-दलको अपने ही दाँतोंसे क्षत करके—"ललिता! तुम्हारी सखी राधाने यह क्षत किया है"—श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर तुम्हारे श्रीमुखकी जो शोभा होगी, वह मुझमें परम हर्षको कब अर्पण करेगी? यदि कहो कि उन श्रीराधाकी मुख शोभा कैसी है? उनके श्रीमुखकी शोभा मन्द-मुसकानके द्वारा चित्रित कटाक्षपात और श्रीकृष्णकी महाविदूषकताको किञ्चित व्यञ्जित करनेवाली कुछ उठी हुई भौंहोसे युक्त है। इस प्रकार उन मिथ्यावादी श्रीकृष्णपर श्रीराधाजीका कोप व्यञ्जित हुआ॥ ३९॥

दैन्यमालम्ब्य पुनराह—

**कथमिदमपि वाञ्छितुं निकृष्टः स्फुटमयमर्हति जन्तुरुत्तमार्हम।**
**गुरुलघुगणनोक्तितार्तनाथौ जयतितरामथवा कृपाद्युतिर्वाम्॥ ४०॥**

**श्लोकानुवाद—**(दैन्य अवलम्बन करके पुनः कहा जा रहा है—) हे आर्त्तनाथ श्रीश्रीराधागोविन्द! यद्यपि उत्तम भागवतगणों द्वारा वाञ्छनीय तुम्हारी प्रेमसेवाकी आशा करना भी इस निकृष्ट दासीके लिए सर्वदा अयोग्य है, तथापि तुम्हारी सर्वोत्कृष्ट

कृपा-द्युति योग्य-अयोग्यका विचार नहीं करती। इसलिए मैं दुर्लभ प्रेमसेवा हेतु प्रार्थना करनेमें प्रवृत्त हो रही हूँ॥४०॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**कथमिति। हे आर्तनाथौ, अयं निकृष्टो जन्तुरिदमीदृशं सेवाभाग्यमपि कथं वाञ्छितुमर्हति। कीदृशमिदम्? उत्तमार्हं परमभागवतानां वाञ्छनीयम्। अथवा वां युवयोः कृपाद्युतिर्जयतितरां निखिलोत्कृष्टा विराजते। कीदृशी सेत्याह—गुर्विति। उत्कृष्टापकृष्टगणनारहितेत्यर्थः। यद्यप्यय-मधमस्तथापि तव कृपयैवैवं प्रवर्त्यत इत्यर्थः॥४०॥

**भाष्यानुवाद—**हे आर्त्त पालक! हे आर्त्त पालिके! यह दीन-हीन दासी उस प्रकारके सेवा-सौभाग्यकी इच्छा भी करनेके योग्य है क्या? यदि कहो कि वह सेवा-सौभाग्य कैसा है? वह प्रेम-सेवा परम भागवतोंके लिए भी वाञ्छनीय है। अथवा जिस प्रेम-सेवाकी प्राप्तिमें आप दोनोंकी कृपाद्युति अत्यधिक रूपसे जययुक्त होकर सम्पूर्ण उत्कर्षताके साथ विराजित हो रही है। यदि कहो कि वह कृपा-द्युति कैसी है? वह उत्तम-अधमके विचारसे रहित है। यद्यपि मैं अधम हूँ, तथापि तुम्हारी कृपासे ही मेरी इस प्रकारकी इच्छा करनेकी प्रवृत्ति उदित हुई है—यह अर्थ है॥४०॥

तत्कृपाफलं प्रार्थयति—

**वृत्ते दैवाद्व्रजपतिसुहृन्नन्दिनीविप्रलम्भे**
**संरम्भेणोल्लसितललिताशङ्कयोद्भ्रान्तनेत्रः ।**
**त्वं शारीभिः समयपटुभिर्द्रागुपालभ्यमानः**
**कामं दामोदर मम कदा मोदमक्ष्णोर्विधाता॥४१॥**

**श्लोकानुवाद—**(उस कृपाके फलकी प्रार्थनाकी जा रही है—) हे दामोदर! दैववश श्रीवृषभानुकी अतिप्रिय पुत्री श्रीराधिकाके साथ तुम्हारा विच्छेद होनेपर 'कुपित ललिताजी मेरी भर्त्सना करेंगी'—इस भयसे तुम उद्विग्न नेत्रों द्वारा प्रकाशित व्याकुलतासे युक्त हो जाओगे। उस समय निकुञ्जस्थ सारिकाएँ अवसर प्राप्त करके 'राजनन्दिनी श्रीराधाकी तुमने अकारण वञ्चना की है'—ऐसा कहकर तुम्हारा बहुत तिरस्कार करेंगी। अतएव अपनी तत्कालिक

वदन–माधुरी दिखलाकर तुम कब मेरी इच्छानुसार मेरे नयन–युगलको आनन्दित करोगे? ॥ ४१ ॥

**स्तवमाला–विभूषण भाष्य**—वत्ते इति। हे दामोदर, त्वं कदा ममाक्ष्णोर्मोदं विधाता कर्ता। कामं यथेच्छम्। कीदृशः सन्? व्रजपतिसुहृन्नन्दिन्याः श्रीराधिकाया विप्रलम्भे दैवाद्वृत्ते सति। राधायां विप्रलब्धायां सत्यामित्यर्थः। उज्ज्वलाख्यः कृष्णसखः स्मरो देवस्तस्येदं कर्म दैवं तस्मात्। तदिच्छात इत्यर्थः। लीलाविस्तारार्था खलु तदिच्छैवं प्रवर्तते। संरम्भेण क्रोधेनोल्लसिता जाज्वल्यमाना या ललिता तस्याः शङ्कया भीत्या उद्भ्रान्ते त्रस्ते नेत्रे यस्य सः। समयपटुभिरवसरज्ञाभिः शारीभिर्गौराटीभिर्द्राक् शीघ्रमुपालभ्यमानः। परमसुन्दररूपस्य ते राजपुत्रस्यापि धीसौन्दर्यं नास्ति यदेतामनुपमरूपगुणां त्वदेकतानां राजपुत्रीं वञ्चयसीति निर्भर्त्स्यमानः सन्नित्यर्थः। मोदविधानाभ्यर्थनयैवं व्यज्यते। रूक्षास्ताः सर्वाः केनचिच्चातुर्येण त्वय्यनुकूलां विधाय मोदिष्ये यदि मामङ्गीकरोषीति ॥ ४१ ॥

**भाष्यानुवाद**—हे दामोदर! तुम कब मेरी इच्छानुसार मेरे नेत्रोंको आनन्दित करोगे? यदि कहो कि किस रूपमें तुम्हारे नेत्रोंको आनन्दित करूँ? इसके लिए कह रही हैं—श्रीवृषभानुकी अतिप्रिय पुत्री श्रीराधिकाके साथ दैववशात् तुम्हारा विच्छेद होनेपर क्रोधसे दमकती हुई ललिताके भयसे भयभीत होकर उद्विग्न नेत्रवाले तुम्हें देखकर अवसरको जाननेवाली सारिकाएँ जब—"परमसुन्दर रूपवान राज–पुत्र होनेपर भी तुममें बुद्धिका सौन्दर्य नहीं है, क्योंकि ऐसे अनुपम रूप, गुणसे युक्त तुममें सम्पूर्ण रूपसे तन्मय हुई राजपुत्री श्रीराधाको ही तुम ठग रहे हो"—इस प्रकारके उलाहने दे रही होगी—(उन उलाहनोंको सुनकर उस समय तुम्हारे मुखकमलपर जो सब विचित्र भाव प्रकाशित होंगे) उन भावोंसे युक्त अपने दर्शन देकर मुझे आनन्दित करो।

आनन्द विधानकी अभ्यर्थना (याचना) के लिए इस प्रकारके भावोंको व्यक्त किया गया है कि यदि तुम मुझे अङ्गीकार करते हो तो रूठी हुई सब सखियोंको किसी भी प्रकारके चातुर्यसे तुम्हारे अनुकूल करके तुम्हें आनन्दित करूँगी अर्थात् किसी

कौशल-विशेषका अवलम्बन करके ललिताजीको प्रसन्न करके श्रीराधासे तुम्हारा-मिलन कराऊँगी।

उज्ज्वल नामक जो श्रीकृष्णका सखा है, वही श्रीश्रीराधागोविन्दकी लीला-पुष्टिके लिए स्मरदेव (कन्दर्पदेव) है, यह विच्छेद कर्म भी दैव अर्थात् उज्ज्वलका ही है (क्योंकि श्रीश्रीराधागोविन्दकी माधुर्यमयी लीलाओंका काल, कर्म, गुण और दैवादिके साथ कोई सम्पर्क नहीं होता।) लीलाके विस्तारके लिए निश्चित रूपसे उज्ज्वलकी इच्छासे ही यह सब होता है॥ ४१॥

**रासारम्भे विलसति परित्यज्य गोष्ठाम्बुजाक्षी-**
**वृन्दं वृन्दावनभुवि रहः केशवेनोपनीय।**
**त्वां स्वाधीनप्रियतमपदप्रापणेनार्चिताङ्गीं**
**दूरे दृष्ट्वा हृदि किमचिरादर्पयिष्यामि दर्पम्॥ ४२॥**

**श्लोकानुवाद**—हे श्रीमति राधिके! श्रीवृन्दावनमें रासक्रीड़ा आरम्भ होनेपर श्रीकृष्ण अन्यान्य व्रजरमणियोंका परित्याग करके तुम्हें निर्जनमें ले जायेंगे और वहाँ वे तुम्हारे अधीन होकर अनेक प्रकारके पुष्पोंके द्वारा तुम्हारी वेश-भूषामें तत्पर होंगे। इस घटनाको दूरसे देखकर कब मेरा हृदय गर्वसे पूर्ण हो उठेगा? ॥ ४२॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—रासारम्भे इति। हे राधे, वृन्दावनभुवि त्वां दूराद्दृष्ट्वाचिराच्छीघ्रं हृदि किं दर्पमर्पयिष्यामि। त्वां कीदृशीम्? विलसति रासारम्भे गोष्ठाम्बुजाक्षीवृन्दं परित्यज्य सर्वाः कान्ताः विहाय रहो निर्जनमुपनीय केशवेन कर्त्रार्चिताङ्गीं कृतसर्वाङ्गकुसुमवेशाम्। केशवेन कीदृशेनेत्याह—स्वेति। स्वाधीनस्य प्रियतमस्य यत्पदं कुसुमालंकारनिर्माणादिरूपो व्यवसायस्तत्प्राप्नोतीति तेन। त्वदाज्ञानुवर्तिनेत्यर्थः॥ ४२॥

**भाष्यानुवाद**—हे श्रीमति राधे! क्या (कभी ऐसा दिन आयेगा, जब) वृन्दावन-भूमिपर तुम्हें दूरसे ही देखकर शीघ्र ही मेरा हृदय गर्वसे भर उठेगा? यदि कहो कि श्रीराधा किस प्रकारकी हैं? इसके लिए कह रही हैं—रासका आरम्भ होनेपर व्रजकी समस्त कमल-नयनाओंको परित्याग करके निर्जनमें ले जाकर केशवके

द्वारा पुष्प वेश-रचना द्वारा अर्चित समस्त अङ्गोंवाली। यदि कहो कि किस प्रकारके केशवके द्वारा (वेश-रचना की जा रही है)? इसके लिए कह रही हैं—कुसुम-अलङ्कारोंके निर्माण एवं वेश-रचना आदि कार्योंके द्वारा जिन्होंने श्रीराधाजीको स्वाधीन प्रियतमा अर्थात् स्वाधीनभर्त्तृकाका पद प्राप्त कराया है। अर्थात् जो केशव सदा श्रीराधाकी आज्ञाके अधीन हैं॥ ४२॥

**रम्या शोणद्युतिभिरलकैर्यावकेनोर्जदेव्याः**
**सद्यस्तन्द्रीमुकुलदलसक्लान्तनेत्रा व्रजेश।**
**प्रातश्चन्द्रावलिपरिजनैः साचि दृष्टा विवर्णै-**
**रास्यश्रीस्ते प्रणयति कदा संमदं मे मुदं च॥ ४३॥**

**श्लोकानुवाद—**हे व्रजराजकुमार! प्रातःकाल चन्द्रावलीके कुञ्जसे श्रीराधिकाके कुञ्जमें आकर मानिनी श्रीराधिकाके मान-भञ्जनके लिए उनके अलताङ्कित श्रीचरणोंमें मस्तक झुकानेके कारण तुम्हारी अलकावली (घुँघराले केश) लाल वर्णकी हो गयी है एवं रात्रि-जागरणके कारण तुम्हारे नयन-युगल उस समय निद्रा-आवेशके कारण मुकुलित (अध-मुँदे) तथा आलस्यसे भरे होनेके कारण क्लान्त हो रहे हैं। दूसरी ओर चन्द्रवलीकी सखियाँ (तुम्हारे मुखमकलकी शोभाको अलतायुक्त देखकर क्षोभवशतः) विवर्ण होकर वक्र दृष्टिसे तुम्हारे उन भावोंको देख रही हैं, अतएव तुम्हारी तत्कालोचित वैसी मुख-शोभा कब मेरे हृदयमें युगपत् आनन्द एवं गर्वका विस्तार करेगी?॥ ४३॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**रम्येति। हे व्रजेश, ते तवास्यश्रीर्मुखशोभा कदा मे संमदमतिदर्पं मुदं हर्षं च प्रणयति करिष्यति। *'दर्पो मदोऽवलेपः'* इति हलायुधः। कीदृशी सा? ऊर्जदेव्याः श्रीराधाया यावकेन पादालक्तकेन प्रसादनप्रणतिलग्नेन शोणद्युतिभिरलकै रम्या। पुनः कीदृशी? सद्यस्तत्क्षणम्। *'सद्यः सपदि तत्क्षणे'* इत्यमरः। तन्द्र्या किञ्चिन्निद्रया मुकुलन्ती मुकुलायमाने अलसे क्लान्ते च नेत्रे यस्यां सा। पुनः कीदृशी? विवर्णैश्चन्द्रावलिपरिजनैः प्रातः साचि वक्रं दृष्टा॥ ४३॥

**भाष्यानुवाद**—हे व्रजेश! तुम्हारे श्रीमुखकी शोभा कब मेरे हृदयमें अत्यन्त गर्व और आनन्दका विस्तार करेगी? हलायुध कोषमें कहा गया है—'दर्प, मद एवं अवलेप समानार्थक शब्द हैं।' यदि कहो कि उस मुखकी शोभा कैसी है? इसके लिए कह रही हैं—ऊर्जादेवी श्रीराधाके चरणोंके अलतामें प्रणति करनेसे लगी हुई रक्तिम प्रभासे युक्त अलकावलियोंसे रमणीय है। पुनः यदि कहो कि वह (मुखश्री) कैसी है? तत्क्षण अर्थात् उस समय किञ्चित् निद्रासे मुकुलित (अध-मुँदे), अलसाये और क्लान्त नेत्रोंसे युक्त हैं। अमरकोषमें कहा है—'सद्यः, सपदि एवं तत्क्षण समानार्थक शब्द हैं।' पुनः यदि कहो कि वह मुखश्री कैसी है? प्रातःकालमें विवर्ण हुए चन्द्रावलीके परिजनोंके द्वारा वक्र दृष्टिसे देखी जानेवाली॥ ४३ ॥

**व्यात्युक्षीरभसोत्सवेऽधरसुधापानग्लहे प्रस्तुते**
**जित्वा पातुमथोत्सुकेन हरिणा कण्ठे धृतायाः पुरः।**
**ईषच्छोणिममीलिताक्षमनृजुभ्रूवल्लिहेलोन्नतं**
**प्रेक्षिष्ये तव सस्मितं सरुदितं तद्देवि वक्त्रं कदा॥ ४४॥**

**श्लोकानुवाद**—हे देवि श्रीराधिके! अधरसुधा-पानको पण रखकर तुम दोनोंके पिचकारी द्वारा होनेवाले जल-सेचन-क्रीड़ारूपी उत्सवके आरम्भ होनेपर जब उस क्रीड़ामें जय-लाभ करके श्रीकृष्ण हृष्ट-चित्तसे अधर-सुधा पानके लिए सब सखियोंके समक्ष तुम्हारे कण्ठदेशको ग्रहण करेंगे, उस समय बाह्य रूपसे कोपको प्रकाशित करनेके कारण लाल-लाल नयन और कुटिल भ्रू-लताको ऊपर चढ़ाने तथा (गर्व हेतु श्रीकृष्णका) अनादर करनेके कारण उन्नत, हास्य एवं रोदनसे मिश्रित तुम्हारे श्रीमुखकमलका मैं कब दर्शन करूँगी?॥ ४४॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—व्यात्युक्षीति। हे देवि, व्यात्युक्षीरभसोत्सवे तव तद्वक्त्रं कदाहं प्रेक्षिष्ये। यन्त्रादिना मिथोऽम्बुसेको व्यात्युक्षी। *'कर्मव्यतिहारेण च स्त्रियाम्'* इति सूत्रात्पदसिद्धिः। तस्यां यो रभसो वेगस्तद्युक्ते उत्सवे

इत्यर्थः। तस्मिन्कीदृशे? अधरसुधापानमेव ग्लहः पणो यस्मिंस्तादृशे। तव कीदृश्याः? तदुत्सवे जित्वा विजयमासाद्य पुरः सखीनामग्रे त्वदधरसुधां पातुमुत्सुकेन हरिणा कण्ठे धृताया गृहीतायाः। तद्वक्रं कीदृशम्? ईषदल्पः शोणिमा यस्मिंस्तत् मीलिते मुद्रिते अक्षिणी यत्र तत्। अनृजू कुटिले भ्रूवल्ल्यौ यत्र तत् हेलयानादरेणोन्नतम्। अत्र किलकिञ्चितकुट्टमितबिब्बोकास्त्रयो भावा वर्णिताः। एषां लक्षणानि यथा—*'गर्वस्मिताभिलाषादेर्भीकोपादेश्च मिश्रणम्। प्रमोदात्प्रेयसः सङ्गे कथ्यते किलकिञ्चितम्। दयिते कुचसंस्पर्शमुखचुम्बादि कुर्वति। हृद्यानन्दो बहिः कोपः स्मृतं कुट्टमितं बुधैः॥ बिब्बोकः कथ्यते गर्वादिष्टे वस्तुन्यनादरे॥'* इति। एतानि लक्ष्येषु योज्यानि॥४४॥

**भाष्यानुवाद**—हे देवि! जल-सेचनरूपी उत्सवमें मैं तुम्हारे वक्र श्रीमुखका कब दर्शन करूँगी? 'व्यात्युक्षी' का अर्थ पिचकारी आदिसे परस्परके ऊपर जलका छिड़काव करना है। 'कर्म व्यतिहारेण च स्त्रियाम् अर्थात् भाव वाच्यमें स्त्रीलिङ्ग होनेपर कर्म व्यतिहार गम्यमान हो तो धातुसे णिच् प्रत्यय होता है' पाणिनीय (३/३/४३) सूत्रसे 'व्यात्युक्षी' पदकी सिद्धि है। जिसके अनुसार 'व्यात्युक्षीरभसोत्सव' का अर्थ है—जल-सेचन-क्रीड़ारूपी आवेशसे युक्त उत्सव (होली)। यदि कहो कि वह उत्सव कैसा है? इसके लिए कह रही हैं—अधर-सुधा-पानरूपी पणसे युक्त है। यदि कहो कि तुम कैसी हो? इसके लिए कह रही हैं—उस उत्सवमें विजय प्राप्त कर अधर-सुधा-पानके लिए उत्सुक श्रीहरिके द्वारा सखियोंके सम्मुख कण्ठ-देशको धारण की हुई। यदि कहो कि तुम्हारे मुखका वक्रभाव कैसा है? अल्प रक्तिमा, अल्प मुद्रित आँखें और कुटिल भ्रू लताओंसे युक्त तथा (गर्व हेतु श्रीकृष्णका) अनादर करनेके कारण ऊँचा उठा हुआ। प्रस्तुत श्लोकमें श्रीराधारानीके किलकिञ्चित्, कुट्टमित और बिब्बोक—तीनों भावोंका वर्णन किया गया है। इनके लक्षण हैं, जैसे—"नायक-नायिकाके सङ्गकालमें अतिशय हर्षके कारण नायिकाके गर्व, हास्य एवं अभिलाषादि भाव यदि भय, कोप इत्यादि द्वारा विमिश्रित होते हैं, उन भावोंका पण्डितगण 'किलकिञ्चित्' रूपमें वर्णन करते हैं। नायक द्वारा स्तन-स्पर्श एवं मुख-चुम्बनादि करनेपर यदि नायिकाका

बाहरसे कोप प्रकाशित हो और भीतरसे आनन्द हो, तो उस भावको पण्डितगण 'कुट्टमित' कहते हैं। गर्वके कारण इष्ट वस्तुमें अनादरकी अभिव्यक्तिको 'बिब्बोक' कहा जाता है।" इन लक्षणोंको यहाँ युक्त करना होगा॥ ४४॥

**आलीभिः सममभ्युपेत्य शनकैर्गान्धर्विकायां मुदा**
**गोष्ठाधीशकुमार हन्त कुसुमश्रेणीं हरन्त्यां तव।**
**प्रेक्षिष्ये पुरतः प्रविश्य सहसा गूढस्मितास्यं बला-**
**दाच्छिन्दानमिहोत्तरीयमुरसस्त्वां भानुमत्याः कदा॥ ४५॥**

**श्लोकानुवाद**—हे व्रजेन्द्रनन्दन! सखियोंसे परिवेष्टित होकर गान्धर्विका श्रीराधिका जब तुम्हारी पुष्प-वाटिकामें प्रवेश करके अलक्षित रूपसे आनन्दपूर्वक पुष्प चयन कर रही होंगी, तब तुम सहसा ही उस स्थानपर प्रवेश करके श्रीराधाकी सहचरी भानुमतीके वक्षःस्थलसे उत्तरीय वसनको बलपूर्वक ग्रहण करोगे। उस समय बाहरसे कोपका प्रकाश करनेवाले एवं अन्तरमें गूढ़ हास्यसे युक्त तुम्हारे मुखकमलको मैं कब देख पाऊँगी?॥ ४५॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—आलीभिरिति। हे गोष्ठाधीशकुमार, आलीभिर्ललितादिभिः समं गान्धर्विकायां शनकैस्तव पुष्पवाटीमुपेत्य कुसुमश्रेणीं हरन्त्यां सत्यां सहसा पुरतः प्रविश्य भानुमत्या गान्धर्विकासहचर्या उरस उत्तरीयं बलादाच्छिन्दानं त्वामहं कदा प्रेक्षिष्ये? 'अतर्किते तु सहसा' इत्यमरः। त्वां कीदृशम्? गूढस्मितास्यम्॥ ४५॥

**भाष्यानुवाद**—हे गोष्ठाधीश श्रीनन्दकुमार! ललितादि सखियोंके साथ गान्धर्विका श्रीराधा जब धीरे-धीरे तुम्हारी पुष्प-वाटिकामें पहुँचकर अनेकानेक प्रकारके पुष्पोंको चुरा रही होंगी, तभी सहसा सामनेसे प्रवेश करके गान्धर्विका श्रीराधाकी सहचरी भानुमतीके वक्षःस्थलसे उत्तरीयको बलात् छीननेवाले तुम्हारे मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी? यदि कहो कि तुम कैसे हो? इसके लिए कह रही हैं—रहस्यमयी मुस्कानसे युक्त मुखकमलवाले। अमरकोषके अनुसार 'सहसाका अर्थ अतर्कित (अचानक) है'॥ ४५॥

**उदञ्चति मधूत्सवे सहचरीकुलेनाकुले**
**कदा त्वमवलोक्यसे व्रजपुरंदरस्यात्मज।**
**स्मितोज्ज्वलमदीश्वरीचलदृगञ्चलप्रेरणा-**
**न्निलीनगुणमञ्जरीवदनमत्र चुम्बन्मया॥ ४६ ॥**

**श्लोकानुवाद**—हे व्रजेन्द्रनन्दन! इस व्रजमें वसन्तोत्सवके आरम्भ होनेपर सखियोंसे वेष्टित होकर मन्दहास्यके द्वारा उज्ज्वल मुखवाली श्रीराधाके चपल कटाक्षके प्रेरणसे अर्थात् उनके इङ्गितसे निभृत स्थानपर भेजे गये आप जब गुणमञ्जरी नामकी सखीका मुख चुम्बन कर रहे होंगे, तब तुम्हें इस प्रकार करते हुए मैं कब दर्शन करूँगी? ॥ ४६ ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—उदञ्चतीति। हे व्रजपुरंदरस्यात्मज, सहचरीकुलेन सखीवृन्देनाकुले व्याप्ते मधूत्सवे वसन्तमहसि उदञ्चति सति त्वं मया कदाव-लोक्यसेऽवलोकितो भविष्यसि? कीदृशस्त्वम्? स्मितोज्ज्वलेन मदीश्वर्याः श्रीराधायाश्चलदृगञ्चलेन प्रेरणात् प्रवर्तनाद्धेतोः। निलीनायाः क्वचिन्निलीय स्थिताया गुणमञ्जर्यास्तदाख्यायाः सख्या वदनं चुम्बन्॥ ४६ ॥

**भाष्यानुवाद**—हे व्रजराजनन्दन! सखियोंसे व्याप्त वसन्तोत्सवके उदय होनेपर मैं तुम्हें कब देखूँगी? यदि कहो कि श्रीकृष्णको क्या करते देखना चाहती हो? इसके लिए कह रही हैं—मन्दहास्यके द्वारा उज्ज्वल मदीश्वरी श्रीराधाकी तिरछी चितवनके द्वारा प्रेरित होकर छिपकर बैठी हुई गुणमञ्जरी नामकी सखीका मुख चूमते हुए॥ ४६ ॥

एवं विनोददर्शनं संप्रार्थ्य पुनः सेवां प्रार्थयते—

**कलिन्दतनयातटीवनविहारतः श्रान्तयोः**
**स्फुरन्मधुरमाधवीसदनसीम्नि विश्राम्यतोः।**
**विमुच्य रचयिष्यते स्वकचवृन्दमत्रामुना**
**जनेन युवयोः कदा पदसरोजसंमार्जनम्॥ ४७ ॥**

**श्लोकानुवाद**—(इस प्रकारसे विनोद-दर्शनकी प्रार्थना करनेके उपरान्त अब सेवाकी प्रार्थना की जा रही है—) हे नाथ श्रीकृष्ण!

हे श्रीमती राधिके! तुम दोनों कालिन्दी-तटवर्ति वन-विहारसे थककर जब माधवी-लताके मूलमें विश्राम कर रहे होंगे, उस समय मैं अपने केशपाशको खोलकर उसके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंकी रजका कब सम्मार्जन करूँगी? ॥ ४७ ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—कलिन्देति। हे अधीशौ, अमुना मल्लक्षणेन जनेन स्वकचवृन्दमात्मकेशजूटमुन्मुच्य युवयोः पदसरोजसंमार्जनं पादेभ्यो रजसामपनयनं कदा करिष्यते इत्यन्वयः। युवयोः कथंभूतयोरित्यपेक्षायां कलिन्देत्यादिकं विशदार्थम्॥ ४७ ॥

**भाष्यानुवाद**—हे अधीश्वर! हे अधीश्वरी! मेरे जैसी दासीके द्वारा अपने केशपाश खोलकर उन केशोंके द्वारा तुम दोनोंके चरणकमलोंसे धूल कब पोंछी जायेगी?। यदि कहो कि तुम दोनों कैसे हो? तो इस अपेक्षासे ही—'कलिन्द' इत्यादि कहा गया है, जिसका अर्थ स्पष्ट है॥ ४७ ॥

**परिमिलदुपबर्हं पल्लवश्रेणिभिर्वा**
**मदनसमरचर्याभारपर्याप्तमत्र ।**
**मृदुभिरमलपुष्पैः कल्पयिष्यामि तल्पं**
**भ्रमरयुजि निकुञ्जे हा कदा कुञ्जराजौ॥ ४८ ॥**

**श्लोकानुवाद**—हे कुञ्जराज श्रीश्रीराधारमण! हाय! कब मैं भ्रमरोंसे सुशोभित निकुञ्ज-भवनमें सुकोमल-पुष्पोंके द्वारा तुम्हारे कन्दर्प-युद्धका भार सहन करनेमें सक्षम कुसुम-शय्या और नवपल्लवों द्वारा उपधान (तकिये) की रचना करूँगी? ॥ ४८ ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—परिमिलदिति। हे कुञ्जराजौ, अत्र निकुञ्जे मृदुभिः कोमलैरमलपुष्पैर्वा युवयोस्तल्पं शय्यां कदा रचयिष्यामि? निकुञ्जे कीदृशि? भ्रमराणां युक् योगो यत्र तादृशि। तल्पं कीदृशम्? पल्लवश्रेणिभिः परिमिलदुपबर्हम्। उपबर्हम् उपधानम्। पुनः कीदृशम्? मदनसमरचर्याया भारे पर्याप्तम्। तद्भारसहनक्षममित्यर्थः॥ ४८ ॥

**भाष्यानुवाद**—हे कुञ्जराज! हे कुञ्जेश्वरी! इस निकुञ्जमें कब मैं स्वच्छ-कोमल पुष्पोंसे तुम दोनोंकी शय्याकी रचना करूँगी?

यदि कहो कि कैसे निकुञ्जमें? इसके लिए कह रही हैं—भ्रमरोंसे युक्त निकुञ्जमें। यदि कहो कि शय्या किस प्रकारकी बनाओगी? पल्लवोंकी पंक्तियोंसे निर्मित उपधान (तकिये) से युक्त। पुनः यदि कहो कि वह बिछौना और तकिया कैसे होंगे? इसके लिए कह रही हैं—कन्दर्प-युद्धके भारको सहन करनेमें सक्षम॥ ४८॥

**अलिद्युतिभिराहृतैर्मिहिरनन्दिनीनिर्झरा-**
**त्पुरः पुरटझर्झरीपरिभृतैः पयोभिर्मया।**
**निजप्रणयिभिर्जनैः सह विधास्यते वां कदा**
**विलासशयनस्थयोरिह पदाम्बुजक्षालनम्॥ ४९॥**

**श्लोकानुवाद**—हे श्रीश्रीराधा रमण! विलास-शय्यापर स्थित तुम दोनोंके चरणकमलों और मुखकमलोंको धुलानेके लिए अपनी सखियोंसे परिवेष्टित होकर सूर्यपुत्री कालिन्दी नदीके भ्रमर-मालाके समान कृष्णवर्णवाले जलको स्वर्णकी झारीमें भरकर मैं कब तुम्हारे निकट लाऊँगी?॥ ४९॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—अलिद्युतिभिरिति। निजप्रणयिभिर्जनैः सह मया वां युवयोः पदाम्बुजक्षालनं पयोभिर्जलैः कदा विधास्यते करिष्यते? मुखाम्बुजक्षालनस्याप्युपलक्षणमिदम्। वां कीदृशयोरित्याह—विलासेति। पयोभिः कीदृशैः? अलिद्युतिभिः श्यामकान्तिभिः। *'कालिन्दी कालसलिला'* इति स्मरणात्। मिहिरनन्दिनीनिर्झरात्कालिन्दीप्रवाहादाहृतैरानीतैः पुरटझर्झरीषु स्वर्ण-भृङ्गारकेषु परिभृतैः॥ ४९॥

**भाष्यानुवाद**—मैं अपने प्रणयिजनोंके साथ तुम दोनोंके चरण-कमलोंको जलके द्वारा कब धुलवाऊँगी? इसके उपलक्षणमें[1] मुखकमलको धुलवाना भी समझना होगा। यदि कहो कि तुम दोनों कैसे हो? इसके लिए कह रही हैं—विलास-शय्यापर स्थित। यदि कहो कि किस प्रकारके जलसे प्रक्षालन कराओगी? इसके लिए कह रही हैं—सूर्यनन्दिनी कालिन्दीके प्रवाहसे स्वर्णझारीमें

[1] उपलक्षणसे तात्पर्य है—'स्व प्रतिपादकत्वे सति स्वेतर प्रतिपादिकत्वं' (सिद्धान्त-कौमुदी) अर्थात् किसी एक वस्तुके वर्णनसे अन्य वस्तुओंकी सङ्गति भी जिससे अपने आप हो जाये।

भरकर लाये हुए भ्रमरकी कान्तिके समान अर्थात् श्यामकान्तिमय जलके द्वारा। स्मृति शास्त्रोंमें कहा है—'कालिन्दी कालसलिला' अर्थात् कालिन्दी श्याम रङ्गकी नदी है॥ ४९॥

**लीलातल्पे कलितवपुषोर्व्यावहासीमनल्पां**
**स्मित्वा स्मित्वा जयकलनया कुर्वतोः कौतुकाय।**
**मध्येकुञ्जं किमिह युवयोः कल्पयिष्याम्यधीशौ**
**संध्यारम्भे लघुलघु पदाम्भोजसंवाहनानि॥ ५०॥**

**श्लोकानुवाद**—हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरि श्रीराधिके! सन्ध्याके आरम्भमें निकुञ्जके बीच विलास-शय्याके ऊपर बैठकर जब तुम दोनों द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ करोगे तथा तुम दोनों ही जीतनेकी इच्छासे हास-परिहास आदि कौतुक-रसमें निमग्न होंगे, उस समय क्या मैं धीरे-धीरे तुम्हारा पाद-संवाहन कर पाऊँगी? ॥ ५०॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—लीलातल्प इति। हे अधीशौ, कृतद्यूत-कलहयोर्वां युवयोः संध्यारम्भे मिलनोपक्रमे जाते मध्येकुञ्जमहं पदाम्भोजसंवाहनानि किं कल्पयिष्यामि करिष्यामि? कुञ्जस्य मध्ये मध्येकुञ्जमित्यव्ययीभावः। *'पारे मध्ये षष्ठ्या वा'* इति सूत्रात्। युवयोः कीदृशयोः? जयकलनया विजयेच्छयानल्पां व्यावहासीं मिथः परिहासं कुर्वतोः। व्यात्युक्षीवत्पदसिद्धिः। स्फुटमन्यत्॥ ५०॥

**भाष्यानुवाद**—हे मदीश्वर श्रीश्रीराधारमण! सन्ध्याके आरम्भमें तुम दोनोंके मिलनका उपक्रम (आरम्भ) होनेपर कुञ्जमें द्यूत-क्रीड़ाके कारण हो रहे कलहके समय क्या कभी मैं तुम दोनोंके चरणकमलोंका संवाहन कर पाऊँगी? यदि कहो कि तुम दोनों कैसे हो? इसके लिए कह रही हैं—जीतनेकी इच्छासे परस्पर परिहास करते हुए। 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' इस सूत्रके अनुसार मध्यमें षष्ठी विभक्ति लग जानेसे दोनों ही रूप बनते हैं—कुञ्जस्य मध्ये अथवा मध्येकुञ्ज अर्थात् कुञ्जके मध्यमें अथवा मध्यकुञ्जमें—यहाँ अव्ययीभाव समासका प्रयोग है। (श्लोक संख्या ४४ में व्यवहृत) व्यात्युक्षी पदके समान ही इस पदकी सिद्धि है। अन्य अर्थ स्पष्ट ही है॥ ५०॥

**प्रमदमदनयुद्धारम्भसंभावुकाभ्यां**
**प्रमुदितहृदयाभ्यां हन्त वृन्दावनेशौ।**
**किमहमिह युवाभ्यां पानलीलोन्मुखाभ्यां**
**चषकमुपहरिष्ये साधुमाध्वीकपूर्णम्॥५१॥**

**श्लोकानुवाद**—हे वृन्दावनेश्वर! हे वृन्दावनेश्वरि! इस निकुञ्जवनमें अति उन्मत्ततासे युक्त स्मर-विलासमें दक्ष तुम दोनों जब विलासके आरम्भमें परस्पर हृष्टचित्त होकर मधुपानके लिए अभिलाषा करोगे, उस समय मैं मधुसे भरा हुआ पानपात्र तुम्हारे निकट उपहार स्वरूप लाकर कब कृतार्थ होऊँगी?॥५१॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—प्रमदेति। हे वृन्दावनेशौ, पानलीलोन्मुखाभ्यां युवाभ्यामहं साधुमाध्वीकपूर्णं चषकमुपहरिष्ये दास्यामि। *'चषकोऽस्त्री पानपात्रम्'* इत्यमरः। प्रकृष्टो मदो यत्र तस्य मदनयुद्धस्यारम्भे संभावुकाभ्यामति-कुशलाभ्याम्॥५१॥

**भाष्यानुवाद**—हे वृन्दावनेश्वर! हे वृन्दावनेश्वरि! मधुपान-लीलाके लिए उन्मुख तुम दोनोंके लिए मैं विशुद्ध मधुसे भरा हुआ प्याला कब प्रदान करूँगी? यदि कहो कि किसे प्रदान करोगी? इसके लिए कह रही हैं—अत्यधिक मदमत्ततासे युक्त मदन-युद्धके आरम्भमें स्मरविलासमें अति कुशल उन दोनों जनोंको प्रदान करूँगी। अमरकोश (२/१०/४२) के अनुसार चषक और पानपात्र मदिराके प्यालेके दो नाम हैं॥५१॥

**कदाहं सेविष्ये व्रततिचमरीचामरमरु-**
**द्विनोदेन क्रीडाकुसुमशयने न्यस्तवपुषौ।**
**दरोन्मीलन्नेत्रौ श्रमजलकणक्लिद्यदलकौ**
**ब्रुवाणावन्योन्यं व्रजनवयुवानाविह युवाम्॥५२॥**

**श्लोकानुवाद**—हे व्रजनवयुवराज श्रीकृष्ण! हे व्रजनवयुवती श्रीराधिके! विलास-कुसुम शय्यापर लेटे हुए जब तुम दोनोंके नयन-युगल किञ्चित् उन्मीलित (खुले हुए) होंगे, अलकावलियाँ स्वेद-बिन्दुओंसे आर्द्र होंगी तथा तुम परस्परके श्रान्ति-सूचक

रसालापमें प्रवृत्त होंगे, उस समय लताओंकी मञ्जरियोंसे बने चामरके द्वारा मैं कब तुम दोनोंका वीजन करूँगी?॥ ५२॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**कदेति। हे व्रजनवयुवानौ, व्रततिचमरी-चामरमरुद्विनोदेन युवामहं कदा सेविष्ये? व्रततीनां लतानां याश्चमर्यो मञ्जर्यस्ताभिर्निर्मितस्य चामरस्य व्यजनस्य यो मरुत्पवनस्तस्य विनोदेन। चालनेनेत्यर्थः। स्फुटार्थमन्यत्॥ ५२॥

**भाष्यानुवाद—**हे व्रजनवयुव-युगल! मैं कब आनन्दित होकर चामरके द्वारा तुम्हारी सेवा करूँगी? लताओंकी मञ्जरियोंके द्वारा निर्मित 'चामर' अर्थात् व्यजनके द्वारा कब आनन्दपूर्वक हवा करते हुए तुम्हारी सेवा करूँगी? अन्य अर्थ स्पष्ट ही है॥ ५२॥

**च्युतशिखरशिखण्डां किंचिदुत्स्रंसमानां**
**विलुठदमलपुष्पश्रेणिमुन्मुच्य चूडाम्।**
**दनुजदमन देव्याः शिक्षया ते कदाहं**
**कमलकलितकोटिं कल्पयिष्यामि वेणीम्॥ ५३॥**

**श्लोकानुवाद—**हे दनुजदमन[1] श्रीकृष्ण! श्रीराधाजीके उपदेशसे मैं कब तुम्हारे चूड़ाबन्धनको खोल करके उसमेंसे मयूरपुच्छ एवं पुष्पोंको हटा करके चूड़ेके स्थानपर अग्रभागमें कमलके पुष्पसे सुशोभित वेणी गूँथ दूँगी?॥ ५३॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**च्युतशिखरेति। हे दनुजदमन, देव्याः श्रीराधायाः शिक्षयोपदेशेन ते चूडामुन्मुच्य कदाहं वेणीं कल्पयिष्यामि रचयिष्यामि? चूडां कीदृशम्? च्युतशिखरादग्राच्छिखण्डश्चन्द्रको यस्यास्ताम्। किंचिदल्पं उत्स्रंसमानां श्रमबन्धाम्। अतएव विलुठत्यधःपतन्ती अमलपुष्पश्रेणिर्यस्यास्ताम्। वेणीं कीदृशीम्? कमलेन पद्मेन कलिता युक्ता कोटिरग्रं यस्यास्ताम्। *'स्यात्कोटिरस्त्रे चाग्रेऽपि संख्याभेदप्रकर्षयोः'* इति विश्वः॥ ५३॥

**भाष्यानुवाद—**हे दनुके पुत्र दानवोंका दमन करनेवाले! 'देव्याः' अर्थात् श्रीराधाके उपदेशसे तुम्हारे चूड़ेको खोलकर कब मैं

[1] दनु-ज अर्थात् दक्षकी पुत्री दनुके पुत्र दानवोंका दमन करनेवाले।

वेणीकी रचना करूँगी? यदि कहो कि चूड़ा कैसा है? इसके लिए कह रही हैं—चन्द्राकृति मोरपुच्छ जिसके शिखरसे गिर रहा है तथा थोड़ा-सा ढीला बन्धे होनेके कारण अमल पुष्पोंकी श्रेणी जिसमेंसे नीचे गिर रही है—ऐसा है वह चूड़ा। यदि कहो कि वेणी कैसी बनाओगी? इसके लिए कह रही हैं—जिसका अग्रभाग कमलसे युक्त होगा। विश्वकोषमें कहा गया है—"कोटि शब्दके चार अर्थ हैं—किनारा, अग्रभाग, करोड़ एवं भेद॥"५३॥

**कमलमुखि विलासैरंसयोः स्रंसितानां**
**तुलितशिखिकलापं कुन्तलानां कलापम्।**
**तव कबरतयाविर्भाव्य मोदात्कदाहं**
**विकचविचकिलानां मालयालंकरिष्ये॥५४॥**

**श्लोकानुवाद**—हे कमलमुखि श्रीराधिके! स्मर-विलासके समय मयूरपुच्छके समान सुशोभित तुम्हारे केश-कलापके खुलकर कन्धेके ऊपर गिरनेसे मैं पुनः कबरी-बन्धन करके उस कबरी (जूड़े) को कब आनन्दपूर्वक विकसित-मल्लिका-मालासे सुशोभित करूँगी?॥५४॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—कमलमुखीति। हे कमलमुखि श्रीराधिके, कदा तव कुन्तलानां कलापं वृन्दं कबरतयाविर्भाव्य तस्य बन्धविशेषं निर्मायेत्यर्थः। विकचविचकिलानां विकसितमल्लीनां मालयाहमलंकरिष्ये। *'तद्बन्धविशेषाः स्युर्वेणी धम्मिल्लकुन्तलकबर्यः'* इति, *'मल्लिका विचकिलम्'* इति च हलायुधः। कुन्तलानां कीदृशानाम्? विलासैर्हेतुभिरंसयोः स्कन्धयोः स्रंसितानां सुवलितानाम्। तेषां कलापं कीदृशम्? तुलिताः स्वसादृश्यं नीताः शिखिकलापाः केकिपुच्छा येन तम्॥५४॥

**भाष्यानुवाद**—हे कमलमुखी श्रीराधिके! मैं कब तुम्हारे केश-कलाप (समूह) की कबरी अर्थात् बन्धन विशेषकी रचना कर उसे विकसित मल्लिकाओंकी मालासे अलंकृत करूँगी? यदि कहो कि किस प्रकारके कुन्तलों (केशों) की कबरी बनाओगी? इसके लिए कह रही हैं—स्मर-विलासके कारण कन्धेपर बिखरे हुए

केशोंकी। यदि कहो कि उन केशोंका कलाप (समूह) कैसा है? इसके लिए कह रही हैं—राधाजीके केशकलाप अपनी स्निग्धताके कारण श्रीकृष्णके मयूरपुच्छके समान प्रतीत हो रहे हैं। हलायुध कोषके अनुसार 'केश-बन्धनके विशेष प्रकार हैं—वेणी, धम्मिल्ल, कुन्तल, कबरी इत्यादि।' उक्त कोषमें ही कहा गया है—'मल्लिकाका दूसरा नाम विचकिल है॥'५४॥

**मिथः स्पर्धाबद्धे बलवति वलत्यक्षकलहे**
**व्रजेश त्वां जित्वा व्रजयुवतिधम्मिल्लमणिना।**
**दृगन्तेन क्षिप्ताः पणमिह कुरङ्गं तव कदा**
**ग्रहीष्यामो बध्वा कलयति वयं त्वत्प्रियगणे॥५५॥**

**श्लोकानुवाद**—हे व्रजेश (व्रज युवराज)! द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ होनेपर तुम दोनों अपने-अपने हिरणको पण रखोगे। तब उस क्रीड़ामें व्रजरमणी शिरोमणि श्रीराधिका तुम्हें हराकर तुम्हारे हिरणको लानेके लिए जब हमें सङ्केत करेंगी, तब तुम्हारे प्रिय सखा मधुमङ्गलादिके समक्ष ही हम तुम्हारे हिरणको बाँधकर कब मदीश्वरी श्रीराधाजीके निकट उपस्थित करेंगी?॥५५॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—मिथ इति। हे व्रजेश, व्रजयुवतिधम्मिल्लमणि-नास्मत्स्वामिन्या श्रीराधयाक्षकलहे त्वां जित्वा दृगन्तेन क्षिप्ताः प्रेरिता वयमिहाक्षकलहे पणं तव कुरङ्गं हरिणं बध्वा कदा ग्रहीष्यामस्त्वत्प्रियगणे मधुमङ्गलादिके कलयति पश्यति सति। अक्षकलहे कीदृशे? मिथः स्पर्धयेर्ष्यया बद्धे बलवति प्रबले वलति वर्धमाने॥५५॥

**भाष्यानुवाद**—हे व्रजेश! व्रज-युवती-शिरोमणि हमारी स्वामिनी श्रीराधाके द्वारा द्यूत-क्रीड़ा-कलहमें तुम्हें जीते जानेपर उनकी आँखोंके सङ्केतसे प्रेरित होकर हम इस द्यूत-क्रीड़ाके पण स्वरूप तुम्हारे हिरणको तुम्हारे प्रियगण मधुमङ्गलादिके देखते-देखते ही बाँधकर कब लायेंगी? यदि कहो कि किस प्रकारके द्यूत-क्रीड़ा-कलहमें? इसके लिए कह रही हैं—ऐसे द्यूत-क्रीड़ा-कलहमें जो

श्रीश्रीराधाकृष्णके परस्पर स्पर्धा अर्थात् ईर्ष्यासे बन्धे होनेके कारण प्रबल रूपसे बढ़नेवाला है॥५५॥

**किं भविष्यति शुभः स वासरो यत्र देवि नयनाञ्चलेन माम्।**
**गर्वितं विहसितुं नियोक्ष्यसे द्यूतसंसदि विजित्य माधवम्॥५६॥**

**श्लोकानुवाद**—हे देवि श्रीराधिके! क्या कभी मेरा ऐसा शुभ दिन होगा कि जिस दिन द्यूत-क्रीड़ा-सभामें श्रीमाधवको पराजित करके उन गर्वित श्रीमाधवका परिहास करनेके लिए तुम नेत्रोंके सङ्केत द्वारा मुझे नियुक्त करोगी?॥५६॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—किं भविष्यतीति। हे देवि श्रीराधे स्वामिनि, स शुभो वासरो दिवसः किं मे भविष्यति, यत्र वासरे द्यूतसंसदि भुजबलेन गर्वितं माधवं विजित्य तं विहसितुं त्वं मां नियोक्ष्यसे प्रवर्तयिष्यसि? क्व गतोऽधुना भवतो गर्वः। द्यूतं खलु धीबलेन साध्यं न तु बाहुबलेन। येनासुरान्निहत्य भगवान् गर्वितोऽस्तीति भवन्तमहं परिहसिष्यामीति॥५६॥

**भाष्यानुवाद**—हे देवि श्रीराधे! हे स्वामिनि! क्या कभी मेरा ऐसा शुभ दिन होगा कि जिस दिन द्यूत-सभामें अपने भुजबलपर गर्वित माधवको जीतकर उनपर हँसनेके लिए तुम मुझे नियुक्त करोगी? (यदि कहो कि तुम उनका कैसे परिहास करोगी? इसके लिए कह रही हैं—) "अब तुम्हारा गर्व कहाँ चला गया? द्यूत तो निश्चित रूपसे बुद्धिबल द्वारा जीता जाता है, बाहुबल द्वारा नहीं। ऐसे बाहुबलसे असुरोंको मारकर तुम बड़े गर्वित हो।"—इस प्रकार कहकर मैं श्रीकृष्णका परिहास करूँगी॥५६॥

**किं जनस्य भवितास्य तद्दिनं यत्र नाथ मुहुरेनमादृतः।**
**त्वं व्रजेश्वरवयस्यनन्दिनीमानभङ्गविधिमर्थयिष्यसे॥५७॥**

**श्लोकानुवाद**—हे नाथ श्रीकृष्ण! क्या कभी मेरा ऐसा दिन होगा कि जिस दिन तुम वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका मान भङ्ग करनेके लिए मेरे समक्ष अत्यधिक आदरपूर्वक विनती करोगे?॥५७॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—किं जनस्येति। हे नाथ स्वामिन्, अस्य जनस्य तद्दिनं किं भविता भावि, यत्र दिने त्वमादृतः कृतमत्सत्कारः सन् व्रजेश्वरवयस्यस्य वृषभानोर्नन्दिन्याः श्रीराधाया मानिन्या मानभङ्गविधिमेनं मल्लक्षणं जनमर्थयिष्यसे? हे सुन्दरि, सौहार्दादिगुणवति मदेकहिते श्रीराधाप्रतिक्षणाङ्गसेवया त्वयानुरक्ता त्वद्वाचमङ्गी-कुर्यादेवेति तद्विधिं भिक्षिष्यस इत्यर्थः॥५७॥

**भाष्यानुवाद**—हे स्वामिन् श्रीकृष्ण! क्या कभी मेरा ऐसा दिन होगा कि जिस दिन तुम मुझे अत्यधिक सम्मान प्रदान करते हुए श्रीनन्दरायजीके मित्र श्रीवृषभानुकी कन्या मानिनी श्रीराधाके (प्रबलतर) मानको भङ्ग करनेके लिए मुझ जैसी दासीसे प्रार्थना करोगे? अर्थात् "हे सुन्दरि! सौहार्द आदि गुणवति! मेरी एकमात्र हितकारिणी! तुम्हारे द्वारा सदैव श्रीराधाजीकी अङ्ग-सेवा करनेके कारण श्रीराधाजी तुममें अनुरक्त हैं, अतएव वे तुम्हारे वचनोंको अवश्य ही मान लेंगी।"—इस प्रकार मुझसे याचना करोगे॥५७॥

**त्वदादेश्यं शारीकथितमहमाकर्ण्य मुदितो**
**वसामि त्वत्कुण्डोपरि सखि विलम्बस्तव कथम्।**
**इतीदं श्रीदामस्वसरि मम संदेशकुसुमं**
**हरेति त्वं दामोदर जनममुं नोत्स्यसि कदा॥५८॥**

**श्लोकानुवाद**—हे दामोदर! श्रीराधिकाके आगमनमें विलम्ब देखकर तुम मुझे "हे श्रीराधे! सारिका द्वारा कहे गये तुम्हारे आदेशको सुनकर मैं आनन्दित होकर तुम्हारे राधाकुण्डके तीरपर बैठा हुआ हूँ। श्रीराधे! तुम्हारे आगमनमें इतना विलम्ब क्यों हो रहा है?—इत्यादि मेरे सन्देश-कुसुमोंको लेकर श्रीदामकी बहन श्रीराधाजीके निकट पहुँचाना"—इस प्रकारके वचन कहकर कब मुझे श्रीराधाजीके निकट प्रेरण करोगे?॥५८॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—त्वदादेश्यमिति। हे दामोदर, इत्येवंविधं मम संदेशकुसुमं श्रीदाम्नः स्वसरि भगिन्यां श्रीराधायां हर प्रापयेति वचसा त्वममुं मल्लक्षणं जनं कदा नोत्स्यसि प्रेरयिष्यसि? किंविधं तदिति चेत्तत्राह—त्वदित्यर्धकं विशदार्थम्॥५८॥

**भाष्यानुवाद**—हे दामोदर! "इस प्रकारके मेरे सन्देश-कुसुमको श्रीदामकी बहन श्रीराधाके पास पहुँचा देना"—इस वचनके द्वारा तुम मुझ जैसी दासीको कब श्रीराधाजीके निकट प्रेरित करोगे? यदि प्रश्न हो कि यह सन्देश किस प्रकारका है? तो इसकी अपेक्षामें त्वत् इत्यादि अर्ध-श्लोक कहा गया है और इसका अर्थ स्पष्ट है॥५८॥

**शठोऽयं नावेक्ष्यः पुनरिह मया मानधनया**
**विशन्तं स्त्रीवेशं सुबलसुहृदं वारय गिरा।**
**इदं ते साकूतं वचनमवधार्योच्छलितधी-**
**श्छलाटोपैर्गोपप्रवरमवरोत्स्यामि किमहम्॥५९॥**

**श्लोकानुवाद**—हे श्रीराधिके! तुम्हारे मानिनी होनेपर—'मैं उस महाधूर्त्तका मुख अब और नहीं देखूँगी', 'सुबल-प्रिय कृष्ण स्त्रीवेश धारण करके मेरे कुञ्जमें आ रहा है, अतएव तुम इसे रोको'—इत्यादि तुम्हारे वचनोंका अभिप्राय ठीकसे समझकर गोपप्रवर श्रीकृष्णको वञ्चना एवं आडम्बरपूर्ण वचनोंके द्वारा क्या मैं कभी निषेध करूँगी?॥५९॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—शठोऽयमिति। हे राधिके स्वामिनि, ते साकूतं साभिप्रायं वचनमवधार्य निश्चित्योच्छलितधीर्विवृद्धमतिरहं छलाटोपैर्वञ्चनाडम्बरैर्गोपप्रवरं गोपालचूड़ामणिं कृष्णं किमवरोत्स्यामि? किं तद्वचनं तदाह—शठोऽयमिति। चाटुवचनैर्बहिरनुरञ्जयन्नप्यन्तरप्रियकारित्वात् कृष्णः शठः। ततोऽयं मानधनया मया नावेक्ष्यः। मद्वीक्षायै स्त्रीवेशं सन्तं मन्मन्दिरे विशन्तं सुबलसुहृदं तं छलगिरा त्वं वारय निषेध। सुबलो हि स्त्रीवेशेनास्मद्गुरून् प्रतारयेत्। तत इयं विद्या तेनापि लब्धा ततो रूक्षवचसा निरस्यमानः सशाठ्यं विहास्यतीति तदाकूतं दैत्यविमोहनाय भवतः स्त्रीवेशः पुराभून्न चात्र कश्चिद्दैत्योऽस्तीति किं च प्रसूस्त्वरया भवन्तमाकारयतीति। मत्स्वामिनीमभितः स्थिताभिरतिचतुराभिः प्रतिवेशिनीभिः स्त्रीवेशोऽपि भवान् परिचीयेत। तस्मान्नास्त्यत्र प्रवेशावसरः स्वशाठ्यं ध्यायन् स्ववेश्मैव स्वामी प्रतियात्विति छलाटोपाः॥५९॥

**भाष्यानुवाद**—हे स्वामिनि श्रीराधिके! तुम्हारे वचनोंके अभिप्रायको निश्चितकर अर्थात् ठीकसे समझकर विकसित-बुद्धिवाली मैं वञ्चना एवं आडम्बरपूर्ण वचनोंसे गोपालचूड़ामणि श्रीकृष्णको क्या कभी निषेध करूँगी? यदि प्रश्न हो कि श्रीराधाके वह वचन कैसे हैं? तो उत्तर है—'शठोऽयम्' इत्यादि। अर्थात् (श्रीराधाजी कहेंगी)—"चाटु वचनों द्वारा बाहरसे प्रीति करते हुए भी अन्तरमें अप्रिय-कार्य करनेके कारण कृष्ण शठ है। मैं मानधनवाली हूँ अर्थात् मान ही मेरा धन है, अतः वे मेरे द्वारा देखे जाने योग्य नहीं है। देखो! मुझसे मिलनेके लिए सुबलका सखा श्रीकृष्ण स्त्रीवेशमें मेरे मन्दिरमें प्रवेशकर रहा है, तुम उसे छलवाणीसे रोको, उसे आने मत दो। सुबल तो स्त्रीवेश धारण करके हमारे गुरुजनोंको वञ्चित करता रहता है। लगता है कि उससे यह विद्या इस श्रीकृष्णके द्वारा भी प्राप्त कर ली गयी है।" कुञ्जमें प्रवेश करनेवाले श्रीकृष्ण उस समय तुम्हारे ऐसे नीरस (रूखे) वचनोंसे निरस्त होकर अपनी शठताका परित्याग कर देंगे तथा अन्य कोई उपाय न देख मुझसे अनुनय-विनय करेंगे। तब मैं तुम्हारे अभिप्रेत वचनानुसार श्रीकृष्णसे कहूँगी—"तुमने पहले भी दैत्य-विमोहनके लिए स्त्री (मोहिनी) वेश धारण किया था। परन्तु अब यहाँ कोई दैत्य नहीं, (अतएव यहाँ खड़े क्या कर रहे हो?)—और फिर तुम्हारी माता भी तुम्हें शीघ्र बुला रही है। मेरी स्वामिनीके दोनों ओर स्थित रहनेवाली अति चतुर गोपियाँ तुम्हें स्त्रीवेशमें भी पहचान लेंगी, अतः यहाँ अब तुम्हारे प्रवेशका कोई अवसर नहीं है। स्वामी! अपने शाठ्यका ध्यान करते हुए अपने घर ही लौट जायें"—इस प्रकारके छल और गर्वपूर्ण वचन मैं कब कहूँगी?॥५९॥

**अघहर बलीवर्दः प्रेयान्नवस्तव यो व्रजे**
**वृषभवपुषा दैत्येनासौ बलादभियुज्यते।**
**इति किल मृषा गीर्भिश्चन्द्रावलीनिलयस्थितं**
**वनभुवि कदा नेष्यामि त्वां मुकुन्द मदीश्वरीम्॥६०॥**

**श्लोकानुवाद**—"हे अघनाशक! श्रीवृन्दावनमें वृषभकी आकृतिका कोई दैत्य आकर तुम्हारे प्रियतम नवीन बैलके ऊपर बड़ा ही अत्याचार कर रहा है, अतः तुम शीघ्र ही आकर उसे रोको।"—हे मुकुन्द! मैं इस प्रकारके झूठ-मूठके वचन कहकर तुम्हें कब चन्द्रावलीके निकुञ्जसे मदीश्वरी श्रीराधिकाके निकट लेकर आऊँगी? ॥ ६० ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—अघहरेति। हे मुकुन्द, चन्द्रावलीनिलयस्थितं त्वामहमिति मृषा गीर्भिर्वनभुवि स्थितां मदीश्वरीं कदा नेष्यामि? कास्ता मृषा गिरस्तत्राह—हे अघहर, तव प्रेयान् यो नवो बलीवर्दो वृषभः, असौ वृषभवपुषा दैत्येन बलादभियुज्यते इत्येवंविधाः। तथा चानृतोक्तिवैमुख्य-भागप्यहमनृतवाक्येनापि त्वां सुखयामि मां चेत्स्वीकरोषीति॥ ६० ॥

**भाष्यानुवाद**—हे मुकुन्द! चन्द्रावलीके भवनमें स्थित तुम्हें मैं मिथ्या वाणी द्वारा वन-भूमिमें विराजमान मदीश्वरी श्रीराधाके निकट कब ले जाऊँगी? यदि प्रश्न हो कि वह मिथ्या वाणी कैसी है? तो उत्तर है—'हे अघहर! तुम्हारा प्रिय जो नवीन बैल है, वह बैलरूपधारी किसी दैत्यके द्वारा बलपूर्वक आक्रान्त कर लिया गया है'—ऐसी। यद्यपि मिथ्या वचनोंके प्रति मेरी विमुखता रहती है, तथापि यदि तुम मुझे स्वीकार करोगे, तो मैं झूठे वचनोंसे भी तुम्हें सुख पहुँचाऊँगी॥ ६० ॥

**निगिरति जगदुच्चैः सूचिभेद्ये तमिस्रे**
**भ्रमररुचिनिचोलेनाङ्गमावृत्य दीप्रम्।**
**परिहृतमणिकाञ्चीनूपुरायाः कदाहं**
**तव नवमभिसारं कारयिष्यामि देवि॥ ६१ ॥**

**श्लोकानुवाद**—हे देवि श्रीराधिके! अति घने अन्धकार द्वारा जगत्के ढक जानेपर तुम्हारे मणिमय काञ्ची और नुपुरादि झंकृत होनेवाले अलङ्कारोंको उतारकर भ्रमरकी कान्तिके समान कृष्ण-वर्णके आवरणसे तुम्हारे विद्युत्के समान परम उज्ज्वल श्रीअङ्गोंको ढककर मैं कब तुम्हें नव-अभिसार कराऊँगी? ॥ ६१ ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—निगिरतीति। हे देवि, सूचिभेद्येऽतिनिविडे तमिस्रेऽन्धकारे उच्चैर्जगन्निगिरति सति भ्रमररुचिना निचोलेन प्रच्छदेन दीप्रं विद्युत्प्रभं तवाङ्गमावृत्य नवमभिसारं कदाहं कारयिष्यामि? *'निचोलः प्रच्छदपटः'* इत्यमरः। तव किंभूतायाः? सिञ्जितभयात्परिहृतानि त्यक्तानि मणिकाञ्चीनूपुराणि यया तस्याः॥ ६१॥

**भाष्यानुवाद**—हे देवि! अत्यन्त गाढ़ अन्धकारके द्वारा जगत्के ढक जानेपर अर्थात् ऐसी अन्धेरी रात्रिमें भ्रमरके समान काले रङ्गवाली निचोल अर्थात् ओढ़नीके द्वारा तुम्हारे विद्युत्-प्रभाके समान उज्ज्वल अङ्गोंको ढककर मैं नवीन अभिसारके लिए तुम्हें कब ले जाऊँगी? यदि कहो कि तुम्हें किस प्रकारसे ले जाऊँगी? तो उत्तर है—झङ्कारके भयसे मणियोंसे निर्मित करधनी एवं नूपुरोंसे रहित करके। अमरकोष (२/६/११६) में कहा गया है—'निचोल और प्रच्छदपट समानार्थक शब्द है, जिसका अर्थ ओढ़नी होता है॥ '६१॥

**आस्ये देव्याः कथमपि मुदा न्यस्तमास्यात्त्वयेश**
**क्षिप्तं पर्णे प्रणयजनितादेवि वाम्यात्त्वयाग्रे।**
**आकूतज्ञस्तदतिनिभृतं चर्वितं खर्विताङ्ग-**
**स्ताम्बूलीयं रसयति जनः फुल्लरोमा कदायम्॥ ६२॥**

**श्लोकानुवाद**—हे नाथ श्रीकृष्ण! तुम अपने मुखसे चर्वित ताम्बूलको श्रीराधाके मुखमें अर्पण करोगे। हे देवि श्रीराधिके! तुम प्रणय-कोपवश—'तुम्हारा उच्छिष्ट नहीं खाऊँगी'—कहकर उसे कृष्णके सामने ही पत्तेके ऊपर फेंक दोगी। उस समय तुम्हारे अभिप्रायको जानकर कुञ्चित-कलेवरवाली मैं तुम दोनोंके प्रसादी उस चर्वित ताम्बूलको भक्षण करके कब रोमाञ्चित-कलेवर वाली होऊँगी?॥ ६२॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—आस्ये देव्या इति। हे नाथौ, तत्ताम्बूलीयं चर्वितं कदायं जनो रसयति आस्वादयिष्यति निभृतं गुप्तं यथा स्यात्तथा? किंभूतो जनः? खर्विताङ्गो ह्रस्वीकृतावयवः। आकूतज्ञः उभयप्रसाद-

रूपमेतन्मत्कृपापात्रीयं भुक्तामि (?)ति त्वद्भावज्ञ इत्यर्थः। फुल्लरोमा महाप्रसादमास्वाद्य रोमाञ्चः। कीदृशं ताम्बूलीयं चर्वितमित्यपेक्षायामाह—हे ईश व्रजनाथ, आस्यान्निजमुखाद्देव्याः श्रीराधाया आस्ये मुखे त्वया मुदा प्रीत्या कथमप्यत्याग्रहेण न्यस्तमर्पितम्। हे देवि श्रीराधे, त्वया तु नाहं त्वदुच्छिष्टमद्मीति प्रणयजनिताद्वाम्याद्धेतोरास्यात्स्वमुखात्पर्णे क्षिप्तमिति॥ ६२॥

**भाष्यानुवाद**—हे नाथ श्रीश्रीराधारमण! तुम्हारे द्वारा चबाये हुए ताम्बूलका यह दासी गुप्त रूपसे कब रसास्वादन करेगी? यदि कहो कि यह दासी कैसी है? इसके लिए कह रही हैं—सङ्कुचित अङ्गोंवाली। तथा पुनः हम दोनोंके प्रसादरूप इस ताम्बूलको यह कृपापात्री भक्षण करे—तुम्हारे ऐसे भावको जानकर ऐसे महाप्रसादका आस्वादन करके रोमाञ्चित अङ्गोंवाली। यदि प्रश्न हो कि यह चर्वित ताम्बूल कैसा है? तो उत्तर है—हे व्रजनाथ! तुम्हारे द्वारा प्रीतिपूर्वक अपने मुखसे देवी श्रीराधाके मुखमें किसी भी प्रकारसे अत्यधिक आग्रहपूर्वक अर्पित किया हुआ तथा हे देवि श्रीराधे! 'तुम्हारे उच्छिष्टको मैं नहीं पा सकती'—श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर प्रणय-जनित वाम्यताके कारण तुम्हारे मुखसे पत्तेके ऊपर फेंका गया॥ ६२॥

**परस्परमपश्यतोः प्रणयमानिनोर्वां कदा**
**धृतोत्कलिकयोरपि स्वमभिरक्षतोराग्रहम्।**
**द्वयोः स्मितमुदञ्चये नुदसि किं मुकुन्दामुना**
**दृगन्तनटनेन मामुपरमेत्यलीकोक्तिभिः॥ ६३॥**

**श्लोकानुवाद**—हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरि श्रीराधिके! तुम दोनों परस्पर प्रणय-मान करके एक-दूसरेके दर्शनके लिए उत्कण्ठित होनेपर भी अपने-अपने आग्रहकी रक्षाके लिए एक-दूसरेको देखोगे भी नहीं। उस समय "हे श्रीकृष्ण! तुम बारम्बार मेरे प्रति नेत्रोंसे इङ्गित क्यों कर रहे हो? इससे निवृत्त हो जाओ! क्योंकि मानिनी स्वामिनी श्रीराधा तुम्हारी बात सुननेवाली नहीं है।"—इस प्रकार झूठ-मूठके वचनों द्वारा मैं कब तुम दोनोंको हँसाऊँगी?॥ ६३॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—परस्परेति। हे स्वामिनौ, वां युवयोर्द्वयोः कदाहं स्मितमुदञ्चये जनयिष्यामि? द्वयोः कीदृशयोः? प्रणयमानिनोर्निर्हेतुकमान-वतोरतो धृतोत्कलिकयोर्दर्शनाय सोत्कण्ठयोरपि परस्परमपश्यतोः। यतः स्वं स्वकीयमाग्रहं रक्षतोः पालयतोः। ननु केनोपायेन नौ स्मितमुदञ्चयिष्यसीति चेत्तत्राह—हे मुकुन्द, अमुना दृगन्तनटनेन किं मां नुदसि प्रेरयसि, मानिनीयं तव प्रार्थनां न स्वीकरोतीति तस्मात्त्वं विरमेत्यलीकोक्तिभिर्मृषावाग्भिः। अयं भावः—नुदसि किमित्यादिवाचमाचम्यादौ विमानो हरिरिति स्वामिन्याः स्मितोदयः। मदन्तिके स्वसखीप्रेषणाद्राधादौ विमानेति स्वामिनश्च स इति॥ ६३॥

**भाष्यानुवाद**—हे स्वामी! हे स्वामिनी! मैं कब तुम दोनोंको हँसाऊँगी? यदि प्रश्न हो कि तुम दोनों कैसे हो? तो उत्तर है—दोनों ही 'प्रणयमान' अर्थात् अकारण मान धारण किये हुए हो। अतएव तुम दोनोंके द्वारा परस्परके दर्शनके लिए उत्कण्ठित रहनेपर भी तुम एक-दूसरेको देखोगे भी नहीं, क्योंकि तुम दोनों ही अपने-अपने आग्रहकी रक्षा कर रहे हो। यदि कहो कि किस उपायसे हम दोनोंके हास्यको उदय कराऊँगी? इसके लिए कह रही हैं—'हे मुकुन्द! इस नयन-नटन (चलन) से मुझे क्यों प्रेरित कर रहे हो? ये मानिनी श्रीराधा तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करनेवाली नहीं हैं, अतः अपनी चेष्टाओंसे विराम लो'—इस प्रकार झूठ-मूठके वचनोंसे मैं तुम दोनोंको हँसाऊँगी। इसका भाव यह है—'मुझे क्यों प्रेरित कर रहे हो?' इत्यादि वाक्यका आस्वादन करके श्रीस्वामिनीजीके होठोंपर मुस्कान उदित हो गयी। वे समझने लगी कि श्रीहरि मान-रहित हो गये हैं, अन्यथा ऐसी बात क्यों करते?—अतएव ऐसा समझकर अर्थात् श्रीहरिके मानके पहले भङ्ग होनेसे अपनेको विजयी समझकर श्रीराधाजी मुस्कुरा दी। दूसरी ओर श्रीकृष्ण समझने लगे कि 'मेरे समीप अपनी सखीको भेज दिया'—इससे स्पष्ट है कि श्रीराधा मुझसे पहले ही मान-रहित हो गयीं हैं। इस प्रकार अपनेको विजयी मानकर श्रीस्वामीके मुखपर भी स्मितका उदय हो गया॥ ६३॥

**कदाप्यवसरः स मे किमु भविष्यति स्वामिनौ**
**जनोऽयमनुरागतः पृथुनि यत्र कुञ्जोदरे।**
**त्वया सह तवालिके विविधवर्णगन्धद्रवै-**
**श्चिरं विरचयिष्यति प्रकटपत्रवल्लीश्रियम्॥ ६४॥**

**श्लोकानुवाद**—हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरि श्रीराधिके! मेरा क्या ऐसा शुभ क्षण कभी होगा कि जिस क्षण मैं निकुञ्जमें नाना वर्णोंके गन्ध-द्रव्योंके द्वारा तुम्हारे ललाटपर पत्रावलीकी रचना करके तुम्हारी परम शोभाका सम्पादन करूँगी? ॥ ६४॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—कदेति। हे स्वामिनौ, सोऽवसरः प्रस्तावः किं मे कदापि भविष्यति? *'भवेदवसरः पुंसि मत्तः प्रस्ताववर्षयोः'* इति विश्वलोचनकारः। क्षण इति वा। *'अवसरो वत्सरे क्षणे'* इति हैमः। जनो विविधवर्णैर्गन्धद्रवैः करणैस्त्वया सह तवालिके प्रकटपत्रवल्लीश्रियमनुरागतः करिष्यति रचयिष्यति। त्वया सह तवेति द्वौ प्रत्युक्तम्। त्वया स्वामिन्या सह स्वामिनस्तवालिके। त्वया स्वामिना सह स्वामिन्यास्तवालिक इत्यर्थः। विविधवर्णैः पीतनीलरक्तश्वेतैः गन्धद्रवैश्चतुःसमकर्दमैरित्यर्थः॥ ६४॥

**भाष्यानुवाद**—हे स्वामिनी श्रीराधे! हे स्वामिन् श्रीमाधव! क्या कभी मेरा वह अवसर होगा? विश्वलोचनकारके अनुसार 'अवसर' का प्रयोग—मत्त, प्रस्ताव एवं वर्ष—इन तीन अर्थोंमें किया जाता है। हेमकोषके अनुसार—'अवसर' शब्दका प्रयोग वत्सर (वर्ष) एवं क्षण—दोनोंके लिए होता है। हे स्वामिनी! यह दासी रङ्ग-बिरङ्गे सुगन्धित द्रव्योंसे तुम्हारे उज्ज्वल ललाटके साथ-साथ स्वामीके ललाटपर भी अनुरागपूर्वक सुन्दर पत्रावलीकी कब रचना करेगी? 'त्वया सह तव'—यह दोनोंके लिए प्रयुक्त है, अर्थात् 'हे स्वामिनी! तुम्हारे साथ तुम्हारे स्वामी' अथवा 'हे स्वामि! तुम्हारे साथ तुम्हारी स्वामिनी'—दोनों प्रकारसे अर्थ हो सकता है। विविध वर्ण—पीले, नीले, लाल एवं श्वेत—चारों रङ्गोंके सुगन्धित द्रव्योंको समान रूपसे पङ्किल कर दिया गया है—यह अर्थ है॥ ६४॥

यद्यप्यस्मिन् सेवाभ्यर्थने नाहं योग्यः, तथापि व्रजनिवासलाभात्प्रत्याशा मे भवतीति निवेदयति—

**इदं सेवाभाग्यं भवति सुलभं येन युवयो-**
**श्छटाप्यस्य प्रेम्णः स्फुरति नहि सुप्तावपि मम।**
**पदार्थेऽस्मिन्युष्मद्व्रजमनुनिवासेन जनित-**
**स्तथाप्याशाबन्धः परिवृढवरौ मां द्रढयति॥ ६५॥**

**श्लोकानुवाद—**(यद्यपि मैं ऐसी सेवाकी याचनाके योग्य नहीं हूँ, तथापि व्रजमें निवास प्राप्त होनेके कारण मुझमें ऐसी सेवाकी आशा उत्पन्न हो गयी है—इसलिए निवेदन किया जा रहा है—) हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरि श्रीराधिके! यद्यपि तुम्हारा यह सेवा-सौभाग्य जिससे सुलभ होता है, वैसी प्रेम-सम्पद् मेरे हृदयमें नहीं है, यहाँ तक कि स्वप्नमें भी मैंने कभी उसका अनुभव नहीं किया है, तथापि तुम्हारे नित्यलीला स्थान इस वृन्दावनमें निरन्तर वास करनेके कारण मुझमें ऐसी बलवती आशा अधिक दृढ़ हो रही है॥ ६५॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**इदमिति। हे परिवृढवरौ प्रभुश्रेष्ठौ। *'आर्यः परिवृढः स्वामी प्रभुर्नेता च नायकः'* इति हलायुधः। युवयोरिदं सेवाभाग्यं येन सुलभं भवति, अस्य प्रेम्णश्छटापि सुप्तौ स्वप्नेऽपि मम न स्फुरत्युदयति। तर्हि निराशो भवति चेत्तत्राह—यद्यप्येवं तथापि युष्मद्व्रजमनुनिवासेन हेतुनास्मिन्सेवाभाग्ये पदार्थे वस्तुनि जनित आशाबन्धो मां द्रढयति॥ ६५॥

**भाष्यानुवाद—**हे श्रेष्ठ प्रभु द्वय श्रीश्रीराधाकृष्ण! तुम दोनोंका यह सेवा-सौभाग्य जिससे सुलभ होता है, उस प्रेमकी छटा (झलक) स्वप्नमें भी मुझमें स्फुरित नहीं होती। यदि कहो कि तब क्या निराश हो जाती हो? इसके लिए कह रही हैं—यद्यपि स्वप्नमें भी मुझमें प्रेमकी छटा स्फुरित नहीं होती है, तथापि तुम्हारे लीलाधाम व्रजमें निरन्तर निवास करनेके कारण इस सेवा-भाग्यरूप वस्तुमें उत्पन्न आशाबन्ध मुझे और भी अधिक दृढ़ करता है। हलायुध कोषमें कहा गया है—'आर्य, परिवृढ, स्वामी, प्रभु, नेता और नायक—ये पर्यायवाची शब्द हैं॥'६५॥

मम व्रजनिवासोऽपि युष्मत्कृपैकसाध्य इति मयानुमितं ततः सेवाभाग्यमपि तत्साध्यं भावीति व्यञ्जयन्नाह—

**प्रपद्य भवदीयतां कलितनिर्मलप्रेमभि-**
**र्महद्भिरपि काम्यते किमपि यत्र तार्णं जनुः।**
**कृतात्र कुजनेरपि व्रजवने स्थितिर्मे यया**
**कृपां कृपणगामिनीं सदसि नौमि तामेव वाम्॥ ६६॥**

**श्लोकानुवाद—**(मेरा व्रज-निवास भी एकमात्र तुम्हारी कृपासे ही साध्य हुआ है—ऐसा मैंने अनुमान कर लिया है, तब फिर तुम्हारा साक्षात् सेवा-सौभाग्य भी तुम्हारी कृपा द्वारा साध्य बन ही जायेगा—ऐसी व्यञ्जना करते हुए कहा जा रहा है—) हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरि श्रीराधिके! तुम्हारा दास्यभाव प्राप्तकर परम प्रेमिक श्रीउद्धव आदि महत्-गण जिस स्थानपर तृण-गुल्म आदि जन्मकी कामना करते हैं, मैंने निकृष्ट-जन्म प्राप्त करके भी जिसके प्रभावसे उसी श्रीवृन्दावनमें वास करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है, तुम्हारी उस दीन-गामिनी कृपाको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ॥ ६६॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**प्रपद्येति। भवदीयतां युष्मत्सेवकतां प्रपद्य प्राप्य कलितनिर्मलप्रेमभिर्जातभावैर्महद्भिरुद्धवादिभिरपि तार्णं तृणसंबन्धि किमपि जनुर्जन्म काम्यते वाञ्छ्यते। *'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्'* इत्यादि तद्वाक्यात्। तत्र व्रजवने कुजने निन्द्यजन्मनोऽपि मे स्थितिर्यया कृता, तां वां युवयोः कृपामहं सदसि नौमि। *'जनुर्जननजन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद्भवः'* इत्यमरः। कीदृशीम्? कृपणगामिनीं दीनविषयाम्॥ ६६॥

**भाष्यानुवाद—**तुम्हारे सेवककी पदवीको प्राप्त करके 'निर्मलप्रेम' अर्थात् जातरतिसे युक्त श्रीउद्धव आदि महाजनों द्वारा भी इस श्रीवृन्दावनमें तृण सम्बन्धी (दुर्वा, लता, गुल्म, औषधि) किसी भी जन्मकी वाञ्छा की गयी है। जैसा कि श्रीउद्धवजीने (श्रीमद्भागवत १०/४७/६१ में) कहा है—"जिन समस्त गोपियोंने आत्मीयजनों और आर्यधर्म—जिनका त्याग करना अति कठिन है, उसे भी परित्यागकर परम अनुरागपूर्वक श्रीगोविन्दका भजन किया था,

क्या मैं कभी उनकी चरणधूलिको प्राप्त कर सकूँगा? किन्तु उनकी श्रीचरणधूलिके प्रति मेरी लालसा होनेपर भी वह अति दुर्लभ है। अतएव वृन्दावनमें जो समस्त गुल्म, लता और औषधियाँ इनकी चरणधूलिका सेवन कर रही हैं, क्या मैं उनमेंसे कोई एक हो सकूँगा?" इस श्रीवृन्दावनमें मेरे जैसे निन्दनीय जन्म प्राप्त करनेवालेकी भी जिसके प्रभाव द्वारा यह स्थिति हुई है, आप दोनोंकी उस कृपाको मैं सतत नमस्कार करता हूँ। यदि कहो कि यह कृपा कैसी है? इसके लिए कहती हैं—'कृपण' अर्थात् दीन जनोंकी ओर प्रवाहित होनेवाली। अमरकोष (१/५/२९) में कहा है—'जनुः, जननम्, जन्म, जनिः, उत्पत्ति और उद्भवः—ये पर्यायवाची शब्द हैं॥'६६॥

अथ भक्तिप्रभावावबोधलब्धेन विश्रम्भेण बलमासाद्याह—माधव्येति द्वाभ्याम्।

**माधव्या मधुराङ्ग काननपदप्राप्ताधिराज्यश्रिया**
**वृन्दारण्यविकासिसौरभतते तापिच्छकल्पद्रुम।**
**नोत्तापं जगदेव यस्य भजते कीर्तिच्छटाच्छायया**
**चित्रा तस्य तवाङ्घ्रिसंनिधिजुषां किंवा फलाप्तिर्नृणाम्॥६७॥**

**श्लोकानुवाद**—(इसके बाद भक्तिके प्रभावसे पूर्ण चेतनताकी प्राप्ति होनेपर विश्रम्भ अर्थात् घनिष्ठताके द्वारा प्राप्त बलसे 'माधव्या' इत्यादि दो श्लोकों द्वारा कह रहे हैं—) हे तमालतरो! तुम वृन्दावनके कल्पद्रुम हो। इस कानन-राज्यकी राजलक्ष्मी माधवीके द्वारा तुम्हें आपाद-शिखर (नीचेसे ऊपर) तक घेर लिये जानेसे तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यङ्गरूपी शाखा-प्रशाखाएँ अति मनोहर हो गयी हैं एवं तुम दोनोंका मिश्रित सौरभ श्रीवृन्दावनकी चारों दिशाओंको सुगन्धित कर रहा है। तुम्हारी कीर्तिरूप छायाका आश्रय करनेपर जगत्वासी-मात्र ही सन्ताप रहित हो जाते हैं। अतएव तुम्हारे पादमूलका आश्रय करनेपर किसी विचित्र फलकी प्राप्ति निश्चय ही होगी, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?॥६७॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य**—माधव्येति। हे माधव्या मधुराङ्ग आपादशिखमाश्लिष्यन्त्या माधव्या लतया मधुराणि रुचिराण्यङ्गानि स्कन्ध-शाखादीनि यस्य हे तादृशेत्यर्थः। माधव्या कीदृश्येत्याह—काननपदे वनराजधान्यां प्राप्ताधिराज्यश्रीरधिकारसंपद्यया तयेत्यर्थः। वृन्दारण्ये विकासिनी प्रसृत्वरी सौरभततिर्यस्य हे तादृश। हे तापिच्छकल्पद्रुम तमालसुरतरो। यस्य कीर्तिच्छटाच्छायया जगद्विश्वमपि नोत्तापं भजते, तस्य तवाङ्घ्रिसंनिधिजुषां नृणां फलाप्तिः किं चित्रा। न चित्रेत्यर्थः। *'अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया। कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति॥ तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा॥'* इति तल्लक्षणात्। इह तुल्ये प्रस्तुते तुल्यस्योक्तिः श्लेषच्छायया बोध्या। माधव्यादिपदानां द्व्यर्थकत्वाच्छ-लेषच्छाया॥ ६७॥

**भाष्यानुवाद**—हे तमाल वृक्ष! माधवी लता द्वारा चरणोंसे लेकर मस्तक तक तुम्हारा आलिङ्गन करनेसे तुम्हारे स्कन्ध, शाखा आदि अङ्ग बहुत मधुर (मनोहर) हो गये हैं। यदि कहो कि किस प्रकारकी माधवीके द्वारा? इसके लिए कह रही हैं—वनकी राजधानीमें राज्याधिकाररूपी सम्पत्तिको प्राप्त करनेवाली माधवीके द्वारा।

हे तमालसुरतरो! वृन्दावनमें चारों ओर तुम दोनोंके मिश्रित सौरभका विस्तार हो रहा है, तुम्हारी कीर्त्ति छटाकी छायासे विश्वमें किसीका भी सन्ताप नहीं रहता है—ऐसे (महिमाशाली) तुम्हारे पादमूलमें आश्रय लेनेवालेके द्वारा किसी विचित्र फलकी प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है? कोई आश्चर्य नहीं है—यह अर्थ है।

"जिस स्थानपर कहे जानेवाले पाँच प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारसे अप्रस्तुत विषयके द्वारा प्रस्तुत विषय प्रशंसित हो, वहाँ उस तरहकी वह प्रशंसा ही 'अप्रस्तुतप्रशंसा' कहलाती है। यह 'अप्रस्तुतप्रशंसा' पाँच प्रकारकी है—(१) अप्रस्तुत रूप सामान्यसे प्रस्तुत रूप विशेषकी अभिव्यक्ति (२) अप्रस्तुत रूप विशेषसे प्रस्तुत रूप सामान्यकी अभिव्यक्ति (३) अप्रस्तुत रूप कार्यसे प्रस्तुत रूप कारणकी अभिव्यक्ति (४) अप्रस्तुत रूप कारणसे

प्रस्तुत रूप कार्यकी अभिव्यक्ति और (५) अप्रस्तुत रूप समान वस्तुसे प्रस्तुत रूप समान वस्तुकी अभिव्यक्ति।"

यहाँ इस श्लोकमें 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलङ्कारके पाँचवें भेद अर्थात् 'अप्रस्तुत रूप समान वस्तुसे प्रस्तुत रूप समान वस्तुकी अभिव्यक्ति' का प्रयोग हुआ है। इसे मूल श्लोकमें श्लेष रूपमें[१] प्रयोग किये गये 'छायया अर्थात् छायासे' पद द्वारा समझना चाहिये। मूल श्लोकमें 'माधव्या' आदि पदोंका दो प्रकारके अर्थसे युक्त होनेके कारण 'छाया' पदका श्लेष रूपमें प्रयोग है॥[२]६७॥

**त्वल्लीलामधुकुल्ययोल्लसितया कृष्णाम्बुदस्यामृतैः**
**श्रीवृन्दावनकल्पवल्लि परितः सौरभ्यविस्फारया।**
**माधुर्येण समस्तमेव पृथुना ब्रह्माण्डमाप्यायितं**
**नाश्चर्यं भुवि लब्धपादरजसां पर्वोन्नतिर्वीरुधाम्॥ ६८॥**

**श्लोकानुवाद—**हे श्रीवृन्दावन-कल्पवल्लि! कृष्ण-मेघके अमृत-वर्षणसे उल्लसित होकर तुम्हारी लीलारूप मधु-धाराका अति सुगन्धित सौरभ सर्वत्र विस्तारित होकर अपने माधुर्यसे समस्त ब्रह्माण्डको ही तृप्त कर रहा है—अतएव वहाँ तुम्हारी पाद-रेणुका सेवन करनेवाली लताओंका जो विशेष महत्त्व होगा, उसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है?॥ ६८॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**त्वल्लीलेति। हे वृन्दावनकल्पवल्लि,

---

[१] 'श्लेष' का लक्षण—किसी पद अथवा आंशिक पदका एकबार श्रवण करनेसे अनेक अर्थोंके प्रतिपादनको 'श्लेष' कहते हैं।

[२] श्रीराधा रूप माधवी-लतासे भलीभाँति आलिङ्गित होनेसे श्रीकृष्णरूप तमालकी अत्यधिक शोभाका विस्तार हुआ है। राधाप्रेम कृष्ण-माधुर्यकी पुष्टि करता है। श्रीश्रीराधागोविन्दके अङ्ग-सौरभसे वृन्दावन सुरभित है। उनकी कीर्ति-छायाके आश्रयसे सम्पूर्ण तापोंका शमन हो जाता है। उनके चरणोंका आश्रय करनेसे सेवा-फल प्राप्त होगा ही, इसमें आश्चर्य क्या है? स्वाभीष्टकी सिद्धिके लिए अप्राकृत रसिक कवि श्रीपाद रूप गोस्वामी श्रीवृन्दावनके कल्पतरुकी कृपा-प्रार्थनाके छलसे अपने परमाभीष्ट तरुण-तमाल श्रीगोविन्द एवं माधवी (श्रीराधा) की करुणाकी कामना करते हैं।

त्वल्लीलामधुकुल्यया कर्त्र्या समस्तमेव ब्रह्माण्डं पृथुना माधुर्येणाप्यायितं तर्पितमतो लब्धपादरजसां वीरुधां लतानां पर्वोन्नतिर्भवेदिति नाश्चर्यम्। लब्धेति त्वत्पादमूलाश्रितानामित्यर्थः। पर्वणो ग्रन्थेरुत्सवस्य चोन्नतिर्महत्त्वम्। तत्कुल्यया कीदृश्या? कृष्णाम्बुदस्य श्यामाभ्रस्यामृतैरम्बुभिरुल्लसितयोच्छलितया। पक्षे हरिबलाहकस्यामृतैर्लीलासुधाभिः। अत्रापि सैवालंकृतिः। अन्ये त्वाहुः—रूपकाङ्गिका प्रथमातिशयोक्तिः पूर्वत्र श्लेषाङ्गिका सा तूत्तरत्रेति। तदिदं विचार्यम्॥ ६८॥

**भाष्यानुवाद**—हे वृन्दावनकी कल्पलता! तुम्हारी लीलारूप मधुकी धाराने समस्त ब्रह्माण्डको ही अपने अत्यधिक माधुर्यसे परितृप्त कर दिया है। 'पर्व' के दो अर्थ हैं—ग्रन्थि एवं उत्सव—इन दोनोंकी 'उन्नति' अर्थात् महत्त्व। 'लब्धा' अर्थात् तुम्हारे पादमूलकी आश्रित लताओं द्वारा तुम्हारी पद-रजको प्राप्तकर। अतएव तुम्हारी पद-रजको प्राप्त करके लताओंकी ग्रन्थि (सम्बन्ध) और उनके उत्सवकी उन्नति अर्थात् विशेष महत्त्व होगा, इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह मधु-धारा किस प्रकारकी है? इसके उत्तरमें कहते हैं—कृष्णाम्बुद अर्थात् कालेवर्णके मेघोंके अमृत-जलसे 'उल्लसित' अर्थात् उच्छलित। पक्षान्तरमें—श्रीहरिरूप मेघोंके अमृत अर्थात् लीला-सुधाके द्वारा उच्छलित—यहाँ भी उसी अप्रस्तुत-प्रशंसा अलङ्कारका प्रयोग हुआ है अर्थात् 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलङ्कारके पाँचवें भेद अर्थात् 'अप्रस्तुत रूप समान वस्तुसे प्रस्तुत रूप समान वस्तुकी अभिव्यक्ति' का प्रयोग हुआ है।[१]

किन्तु अन्य किसीका इस प्रकार कहना है—पिछले श्लोकमें 'रूपक'[२] के आवरणमें प्रथम प्रकारकी 'अतिशयोक्ति' का प्रयोग

---

[१] अर्थात् अप्रस्तुतरूप समान वस्तु (वृन्दावनकी कल्पलता) द्वारा प्रस्तुतरूप समान वस्तु (श्रीराधिका) की महिमाकी अभिव्यक्ति हुई है। व्रजराजनन्दन श्रीश्यामसुन्दररूप मेघ द्वारा लीलामृत वर्षणसे उल्लसित होकर श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाकी लीला-माधुरीकी धाराने अपने माधुर्यसे समस्त ब्रह्माण्डको परितृप्त कर दिया है। अतः श्रीमति राधिकाकी चरणका आश्रय लेनेवाली दासियोंको श्रीयुगलचरण सेवारूप उत्सवकी अवश्य ही प्राप्ति होगी।

[२] 'रूपक'—उपमान और उपमेयका जो तदात्म्य है, उसे 'रूपक' अलङ्कार कहते हैं।

हुआ है तथा इस श्लोकमें 'श्लेष'[३] के आवरणमें वही प्रथम प्रकारकी 'अतिशयोक्ति'[४] का प्रयोग हुआ है। अतः यह विचारणीय है॥ ६८॥

पूर्वमर्थितं सेवाभाग्यं मेऽतिदुर्लभमेव, किंतु यत्र क्वापि जातस्य भवत्पदाब्जभक्तिरस्त्विति प्रार्थयति—

**पशुपालवरेण्यनन्दनौ वरमेतं मुहुरर्थये युवाम्।**
**भवतु प्रणयो भवे भवे भवतोरेव पदाम्बुजेषु मे॥ ६९॥**

**श्लोकानुवाद—**(पहले जिसकी विनतीकी गयी है, वह सेवा-सौभाग्य मेरे लिए अति दुर्लभ है, किन्तु जहाँ कहीं भी जन्म हो, तुम्हारे चरणकमलोंमें भक्ति बनी रहे—अब ऐसी प्रार्थना की जा रही है—) हे व्रजराजनन्दन! हे वृषभानुनन्दिनि! मैं तुम्हारे निकट बारम्बार इसी वरकी प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारे चरणकमलोंमें मेरी जन्म-जन्मान्तर प्रीति बनी रहे॥ ६९॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**पशुपालेति। पशुपालानां वरेण्यौ तेषां राजानौ श्रीमद्वृषभानुनन्दौ तयोर्नन्दिनी च नन्दनश्च तौ तत्संबोधने तथा। भवे भवे जन्मनि जन्मनि। शिष्टं स्पष्टम्॥ ६९॥

**भाष्यानुवाद—**पशुपालोंके वरेण्य अर्थात् गोपोंके दोनों राजाओं—श्रीवृषभानु और श्रीनन्दरायजीकी क्रमशः पुत्री और पुत्रके रूपमें श्रीश्रीराधाकृष्णको सम्बोधित किया गया है। 'भवे-भवे' अर्थात् जन्म-जन्ममें। अन्य पदोंका अर्थ स्पष्ट ही है॥ ६९॥

स्तोत्रपाठाद्वाञ्छितलाभं याचते—

**उद्गीर्णाभूदुत्कलिकावल्लरिरग्रे वृन्दाटव्यां नित्यविलास व्रतयोर्वाम्।**
**वाङ्मात्रेण व्याहरतोऽप्युल्ललमेतामाकर्ण्येशौ कामितसिद्धिं कुरुतं मे॥ ७०॥**

---

[३] 'श्लेष' का लक्षण—किसी पद अथवा आंशिक पदका एकबार श्रवण करनेसे अनेक अर्थोंके प्रतिपादनको 'श्लेष' कहते हैं।

[४] प्रथम प्रकारकी 'अतिशयोक्ति'—उपमान द्वारा निगीर्ण (शब्दका प्रयोग न होकर लुप्तप्राय) उपमेयका निरूपण होनेसे प्रथम प्रकारका 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार होता है।

**श्लोकानुवाद—**(इस स्तोत्रके पाठ द्वारा वाञ्छित-वस्तुकी प्राप्तिकी याचना की जा रही है—) हे नाथ श्रीकृष्ण! हे मदीश्वरि श्रीराधिके! इस श्रीवृन्दावनमें नित्य-विलास-परायण तुम्हारे सम्मुख यह उत्कलिकावल्लरिः (उत्कण्ठारूप लता) उत्पन्न हुई है। केवल वचनोंके द्वारा ही तुम्हारे निकट इसका कीर्त्तन करके मुझमें कम्प उदित हो रहा है, अतः इसे सुननेके बाद कृपापूर्वक इस अतिशय दीन-जनकी अभिलषित सेवा-प्राप्तिकी प्रार्थनाको सिद्ध (सफल) करो॥ ७०॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**उदिति। हे ईशौ, वां युवयोरग्रे उत्कलिकावल्लरिरुत्कण्ठालता उद्गीर्णाभूदुदिता जाता। *'व्रततिर्वल्लरी लता'* इति धनंजयः। एतां वाङ्मात्रेण किं पुनर्मनसापि व्याहरतः पठतो मे कामितसिद्धं युवां कुरुतम्। किं कृत्वेत्याह—आकर्ण्यैति। तां श्रुत्वेत्यर्थः। वां कीदृशयोरित्याह—वृन्दाटव्यामित्यादि॥ ७०॥

**भाष्यानुवाद—**हे ईश्वर और हे ईश्वरि! तुम दोनोंके सम्मुख यह उत्कलिकावल्लरी अर्थात् उत्कण्ठारूपी लता उदित (उत्पन्न) हुई है। धनञ्जय कोषके अनुसार व्रतति, वल्लरी एवं लता समानार्थक शब्द हैं। इस उत्कलिकावल्लरिका मात्र वाचिक रूपसे पाठ करनेपर ही जब मुझमें कम्प उदित हो रहा है, तब फिर मनसे पाठके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या? अतः तुम दोनों मुझ पाठ करनेवालेको अभीष्ट सिद्धि प्रदान करो। यदि कहो क्या करके?—इसके लिए कहते हैं—'आकर्ण्य' अर्थात् इस स्तोत्रको सुन करके। आप दोनों कैसे हैं? इसकी अपेक्षामें कहते हैं—वृन्दाटवीमें नित्य-विहार करनेवाले॥ ७०॥

स्तोत्रस्य जन्मकालं जन्मस्थानं चाह—

**चन्द्राश्वभुवने शाके पौषे गोकुलवासिना।**
**इयमुत्कलिकापूर्वा वल्लरी निर्मिता मया॥ ७१॥**

**॥ इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित स्तवमालायां**
**उत्कलिकावल्लरिः सम्पूर्णा॥**

**श्लोकानुवाद—**(उत्कलिकावल्लरिः नामक स्तोत्रके जन्म-काल और जन्म-स्थानके विषयमें कहा जा रहा है—) चौदह सौ इकहतर (१४७१) शाकाब्दके पौष मासमें श्रीगोकुल (वृन्दावन) में वास करते हुए मैंने इस अपूर्व उत्कलिकावल्लरिः की रचना सम्पन्न की॥ ७१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् रूपगोस्वामी द्वारा विरचित स्तवमालाके अन्तर्गत उत्कलिकावल्लरिः का श्लोकानुवाद सम्पूर्ण हुआ॥

**स्तवमाला-विभूषण भाष्य—**चन्द्रेति। अङ्कानां वामगत्या स्थापनादेक-सप्तत्युत्तर-चतुर्दशशतीगणिते शालिवाहनस्य (१४७१) शाकेऽस्य स्तोत्रस्य निष्पत्तिः। षडशीत्युत्तरषोडशशतीगणिते तस्य (१६८६) शाके तु टीकाया निष्पत्तिः। शालिवाहनस्य संवत्सरगणनेन विक्रमादित्यस्यापि तद्बोध्यम्। *'विक्रमादित्यराज्यस्य पञ्चविंशोत्तरं शतम्। पातयित्वा भवेच्छाकः स नृपः शालिवाहनः॥'* इति वचनात्॥ ७१ ॥

इयमुत्कलिकावल्लरिरुदग्रभावा विमृष्टकाव्यकला।
विद्याभूषणविवृता शश्वद्भावकविभूतये भूयात्॥

॥ इत्युत्कलिकावल्लरी व्याख्याता॥

**भाष्यानुवाद—**अङ्क बाईं ओरसे लिखा जाता है। इस रीतिसे मूल श्लोकमें 'चन्द्राश्वभुवने' के अनुसार चन्द्रमा एक, अश्व सात और भुवन चौदह—इस प्रकार वाम ओरसे गिनती करनेपर शालिवाहनके चौदह सौ इकहत्तरवें (१४७१) शकाब्द वर्षमें इस स्तोत्रकी रचना हुई। छियासी और उससे पहले सौलह सौ परिगणित होनेसे सोलह सौ छियासी (१६८६) शकाब्दमें इस टीकाकी रचना हुई। 'विक्रमादित्यके राज्यके एक-सौ-पच्चीस वर्ष बीत जानेपर शाक (शक-कुलीय) राजा शालिवाहन हुए।'—इस वचनके अनुसार शालिवाहनकी संवत्सर गणनासे विक्रमादित्यका भी बोध होता है॥ ७१ ॥

इस उन्नत एवं श्रेष्ठ भावोंसे पूर्ण एवं मधुर काव्य-कलासे युक्त उत्कलिकावल्लरिः की विवृति बलदेव विद्याभूषणके द्वारा रचित हुई। इस स्तोत्रका भाव, भावुक जनोंके लिए नित्य सम्पत्ति स्वरूप हो।

॥ इस प्रकार उत्कलिकावल्लरिः की व्याख्या समाप्त हुई॥

**भवतीमभिवाद्य चाटुभिर्वरमूर्जेश्वरि वर्यमर्थये।**
**भवदीयतया कृपां यथा मयि कुर्यादधिकां बकान्तकः॥**

(उत्कलिकावल्लरिः श्लोक संख्या २०)

हे ऊर्जेश्वरि श्रीराधिके! मैं तुम्हारा अभिवादन करके चाटु-वाक्योंसे यह वरदान माँगती हूँ कि बकासुरका वध करनेवाले श्रीकृष्ण मुझे तुम्हारी जानकर मुझपर अधिक कृपा करें।